



शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वसुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 8	अंक 32	त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका	10 अक्तूबर, 2024
		इस अंक में	
पीयर रिव्यू समिति : डॉ.शांति नायर डॉ.के श्रीलता डॉ.बी.अशोक		संपादकीय दर्शन की अहिंसात्मकता (गांधी-चिंतन) : प्रो. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत 5	
मुख्य संपादक डॉ.पी.लता		दाम्पत्य विघटन की मनोवैज्ञानिकता : डॉ. लेखा पी 9	
प्रबंध संपादक डॉ.एस.तंकमणि अम्मा		मन्नू भण्डारी की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में सरहदें लाँघती स्त्री की कहानी - रेत समाधि : डॉ. गायत्री एन 12	
सह संपादक प्रो.सती के डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा श्रीमती वनजा पी		'आबे - तौबा' कहानी में अवैध प्रेम - : डॉ.धन्या एल 15	
संपादक मंडल डॉ.बिन्दु सी.आर डॉ.षीना यू.एस डॉ.सुमा आई डॉ.एलिसबत जोर्ज डॉ.लक्ष्मी एस.एस डॉ.धन्या एल डॉ.कमलानाथ एन.एम डॉ.अश्वती जी.आर		एक दृष्टिपात महामना मालवीय जी की पत्रकारिता और : पूनम कुमारी 19	
		शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शिता पर एक अध्ययन : डॉ. अरविन्द कुमार पाल डॉ. विजेता तनेजा	
		अनुवाद : मूल्यांकन के सिद्धान्त : डॉ. षीना वी.के 23	
		नारी अस्मिता की तलाश 'उठो अहल्या' में : डॉ.शबाना हबीब 27	
		विकल्प का सौन्दर्यबोध पैदा करती है 'जंगली : डॉ. प्रवीण कुमार 31	
		कुलपति की कथा' 'मुक्तिपथ' उपन्यास की सामाजिक चेतना : ऋषिकेश श्रीवास्तव 35	
		भारतीय संस्कृति और पाश्चात्यता : : डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट 41	
		श्रीलाल शुक्ल के विशेष सन्दर्भ में 'कलि-कथा : वाया बाइपास' हिंदी उपन्यास : डॉ. बालसुब्रह्मण्यन सी 45	
		का अपूर्व मानक	
		यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका	

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

डॉ.पी.लता
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन :0471-2332468, 9946679280,9946253648

ई-मेल : akhilbharatheehindiacademy@gmail.com

‘प्रकृति’ जीवों को ईश्वर का वरदान है। प्रकृति के जल, हवा, पेड़ों और पौधों के बिना इस धरती में जीव कैसे रहें? प्रकृति के गुणों-खूबियों को भूलकर मनुष्य अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उसे विविध प्रकार से बिगाड़ते हैं ताकि प्रकृति का संतुलन नष्ट होता है, जो दुरंत का हेतु बनता है।

‘ईश्वर का अपना देश’ कहे जानेवाले केरल में पिछले कुछ सालों में कई छोटे-बड़े प्रकृति दुरंत हुए। इन दुरंतों से भारी नुकसान भी हुआ। भूस्खलन से दुरंत भूमि के कई निवासी मर गये। कुछ मृतकों की लाशें रक्षा प्रवर्तकों के कई दिनों के परिश्रम के बावजूद भी मिट्टी के अंदर कहीं पड़ गयीं। अप्रत्याशित प्रकृति दुरंतों में कई घर, उनमें रहनेवालों के साथ ही कीचड़ में डूब गये। दुरंत में जान बाल-बाल बचे व्यक्ति अपने सगे संबन्धियों तथा अपने जीवनकाल की समस्त जायदादों को खोने के दुःख में सिसकियाँ भरके रोते रहते हैं।

अतिवृष्टि के समय धरती की संचय शक्ति से ज़्यादा जल धरती में जम जाता है। यूँ भूगर्भ जल की मात्रा बढ़ने से मिट्टी में दबाव बढ़ता है। इससे संतुलन बिगड़ता है और भूस्खलन होता है। तब तीव्र गति में प्रवाहित होनेवाले पानी के साथ पहाड़ियों की चट्टानें, मिट्टी, प्रस्तर, कंकड़ आदि भी बहते हैं और इस प्रवाह में बीच स्थित घर, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सबकुछ उखड़कर नीचे की ओर बहते हैं।

मानव जीवन प्रकृति पर निर्भर है, यह भूलकर प्रकृति में मनुष्य का अनावश्यक हस्तक्षेप भी भूस्खलन, भूक्षरण आदि का कारण बनता है। वनों-पहाड़ियों के पेड़ों को काटना, पेड़-पौधों को काटकर उस स्थान में चाय या कॉफी का बगीचा लगाना या अन्य खेती करना या मकान-निर्माण करना आदि प्रकृति को असंतुलित करनेवाले घटक हैं। करीब 22 डिग्री से ज़्यादा ढलानवाली

पहाड़ियों में भूस्खलन की संभावना अधिक है। ऐसी जगहों के नक्शे भूगर्भ विभाग ने तैयार किये हैं। इन जगहों में अतिवर्षा होती है तो यहाँ के निवासियों को सतर्क होना है।

केरल में छोटे-बड़े कई भूस्खलन हुए हैं। इनमें पुत्तुमला, कवलप्पारा, पेट्टिमुटी, चूरलमला आदि प्रदेशों में घटित भूस्खलन केरलीय जनता कभी नहीं भूलेगी। वयनाट्ट जिले का पुत्तुमला प्रकृति रमणीय स्थान था। इसका पहला नाम था ‘पूत्तमला’। ‘पूत्तुमला’ का शाब्दिक अर्थ है ‘खिली पहाड़ी’ यानी ‘फूल खिली सुन्दर पहाड़ी’। रंग-बिरंगे सुन्दर फूलों से सुशोभित यह पहाड़ी 8 अगस्त 2019 की भारी वर्षा में दुरंत भूमि बनी। भूस्खलन में 17 जानें निकल गयीं। उनमें 4 लाशें अब भी गायब हैं। अब यहाँ बसनेवाले बूँदा-बूँदी वर्षा से भी डरते हैं। केरल में पुत्तुमला दुरंत के बादवाले दुरंतों से प्रकृति याद दिलाती है कि कुछ भी कहीं नहीं रुका है।

8 अगस्त 2019 को ही ‘कवलप्पारा’ पहाड़ी गाँव (पोत्तुकल्लु पंचायत, मुत्तप्पन पहाड़ी, मलप्पुरम जिला) में 8.00 बजे रात को भूस्खलन हुआ। इसमें 45 घर मिट्टी के अंदर हो गए। 59 निवासियों के जीवन नष्ट हुए। उनमें 49 लाशें मिलीं। शेष मिट्टी में विलीन हुई हों। इस दुरंत में मोबाइल टवर और विद्युत खंभे भी बरबाद होने से इसकी खबर दूसरों को मिलने में 12 घंटों का विलंब हुआ। यहाँ अगस्त महीने के शुरू से लेकर पानी बरस रहा था, किन्तु 8 अगस्त के सायाहन से मूसलधार पानी बरसने लगा। इससे मुत्तप्पन पहाड़ी टूटकर ऊपर से नीचे गिरी ताकि नीचेवाले सारे घर मिट्टी में दब गए।

‘पूत्तुमला दुरंत’ में 58 घर पूर्ण रूप से और 22 घर आंशिक रूप से बरबाद हुए। कई एकड़ कृषि भूमि मिट्टी में दब गयी। कवलप्पारा में

आराधनालय, क्वार्टर्स, गाड़ियाँ, एस्टेट बस्ती, कैटीन, डाकघर सब बरबाद हुए। इस दुरंत से बाल-बाल बचे प्रदेशवासी आज भी उन बुरी यादों से नहीं बचे हैं।

6 अगस्त 2020 को घटित इटुक्की जिले की 'पेट्टिमुटी दुर्घटना' में भी भारी नुकसान हुआ। उस दिन प्रकृति के संहार तांडव में दुरंत भूमि के 70 निवासियों के प्राण नष्ट हुए। वहाँ के 4 निवासियों को क्या हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं है। केरल के प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र 'मून्नार' से 25 कि.मी की दूरी पर स्थित 'कण्णन देवन कंपनी' के 'पेट्टिमुटी चाय एस्टेट' में रात के समय पहाड़ी जल अतिशीघ्र बहता आया और दुर्घटना हुई। सूचनाओं का आदान-प्रदान करनेवाली दूर संचार ऋंखला भी टूट जाने से रात में घटित दुर्घटना की खबर मात्र अगली सुबह को दूसरों को मिली। वह भी पेट्टिमुडी से थोड़ी दूर बसनेवाले कण्णन देवन कंपनी के एक कर्मचारी के ज़रिए, जो सुबह एस्टेट में काम करने आया था। 22 श्रमिक परिवारों को उनके जीवनकाल में अर्जित समस्त जायदाद सहित भूस्खलन ने निगला। पेट्टिमुडी की ओर जानेवाला पुल भी दुरंत में नष्ट हुआ तो रक्षा-कार्य बिल्कुल मुसीबत में पड़ा। स्वयंसेवकों को इस दुरंत स्थान से 14 कि.मी. दूर तक से लाशें मिलीं।

30 जुलाई 2024 को रात के समय चूरलमला (पुंचिरिमट्टम्, मुण्डक्कै, मेप्पाडि पंचायत, वैत्तिरि तालुक, वयनाटु) में अतिवर्षा के फलस्वरूप अतिभयानक भूस्खलन घटित हुआ। इसमें 420 लोग मर गये और 397 लोग घायल हुए। यहाँ के 118 से अधिक लोगों के संबंध में पता ही नहीं है, शायद वे मिट्टी के अंदर हों। इस दुरंत में चूरलमला जनवास केंद्र करीब निर्जीव सा बना है। रात में घटित दुर्घटना में यहाँ के मात्र कतिपय व्यक्ति किसी न किसी प्रकार बच गए। केवल जान बचे इनके पुनर्वास का प्रयास हो रहा है। सरकारी तौर पर

तथा व्यक्तिगत रूप से इनके पुनर्वासन पर ध्यान दिया जा रहा है। CMDRF (Chief Minister's Distress Relief Fund) के ज़रिए तथा कुछ व्यक्ति सीधे भी इनकी आर्थिक मदद करते हैं। घर नष्ट होने से कैम्पों में बसनेवाले इन अतिजीवितों को ज़रूरी चीज़ें (नए वस्त्र, खाना, शुद्ध पेयजल, दवाएँ आदि) जिला कलक्टरों के नियंत्रण कक्षों के ज़रिए पहुँचायी जा रही हैं।

बाल- बाल जान बचे, किन्तु मन टूटे दुरंत भूमि के अपने भाई-बहनों को केरलीय जनता ने पूरे मन से मदद की। जिनके हाथों के तोते उड़ गये हैं और जिनका प्राण मात्र बच गया है, उनके पुनर्जीवन के लिए दूसरों का हाथ होना बहुत ज़रूरी है। यह भी सच है कि अपने मन में अकेलापन का अंगारा बरसाकर गुज़र गये अपने प्रिय जनों की स्मृति में अनंतर जीवन बितानेवाले व्यक्ति शान्ति और सुख के साथ कभी जी नहीं सकते। आँसू पीकर रह जाना ही उनकी नियति है।

वयानाटु जिले में बीच-बीच में होनेवाले भूस्खलन से यह विदित है कि पश्चिमी घाट का संरक्षण छोटे केरल प्रदेश के अस्तित्व के लिए अनिवार्य बात है। दुरनुभवों से कुछ सीखे बिना, दुरंतों का उन्मूलन करने का उचित उपाय सोचे बिना इन्हें नकारना आगे भी बड़े-बड़े प्रकृति क्षोभों का कारण बनेंगे। कितने ही छोटे-बड़े भूस्खलन केरलीयों ने देखे? कितने जीवन नष्ट हुए? कितने व्यक्ति लापता हुए? लापता हुए व्यक्तियों की खोज में उनके सगे- संबंधी कितने दिन भटकते रहे? उनकी लाशें मिट्टी में दब गयी हैं या पानी में बहकर और कहीं पड गयी हैं ? केरल में होनेवाला प्रत्येक भूस्खलन, कमाई नष्ट होना, प्रिय जनों का नुकसान होना जैसे बड़े-बड़े घाव केरलीयों को देता है , जो घाव हमेशा हरे ही रहते हैं।

डॉ.पी.लता

संपादक, शोध सरोवर पत्रिका

(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।



दर्शन की अहिंसात्मकता (गांधी-चिंतन)

◆ प्रो. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

शोधसारः स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारत में एक भाषा को संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने की बहस भी चल रही थी। देश-राष्ट्र की परिकल्पना के विकास के साथ उसका संबंध था। बहुतायत लोगों की भाषा के रूप में हिंदुस्तानी को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदुस्तानी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा था कि “हिंदुस्तानी नाम यद्यपि अंग्रेजों का दिया हुआ है, तथापि है बहुत सार्थक। इससे हिंदुस्तान भर में बोली जानेवाली भाषा का बोध होता है। यह बहुत अच्छी बात है, इस नाम के अंतर्गत साहित्य की हिंदी, सर्वसाधारण हिंदी, दक्षिण हिंदी और उर्दू सबका समावेश हो सकता है। अतएव हमारी समझ में इस नाम को स्वीकार कर लेना चाहिए।”¹ गांधीजी भी यह मानते थे कि हिंदुस्तानी के माध्यम से भारत बोलता है, बोल सकता है। भाषा को धार्मिक-सांप्रदायिकता का आधार देना गांधीजी के लिए स्वीकार्य नहीं होता है। अपनी बात की पुष्टि में वे साफ कहते हैं कि ‘हिंदू’ शब्द भी अपने आप धार्मिक आधार को सूचित नहीं करता है, वह सिंधु नद तीरवासियों की भाषा का सूचक होता है। इस लिहाज से गांधीजी के काल में हिंदुस्तानी अपने आप में अखंडित भारतीय अस्मिता को लेकर आती है। उसके पीछे जनता की आशा-आकांक्षाएँ थीं, राष्ट्र निर्माण की भव्यता थी, लोकतंत्रात्मक संस्कृति की स्वीकृति थी।

(कुंजी शब्दः अहिंसात्मक, भाषा, दर्शन, बहुभाषिकता, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, संस्कृति)

इतिहासकार रामचंद्र गुहा गांधीजी की वाहवाही करते हुए अपनी रचना ‘डेमोक्रेट्स एंड डिसेंट्स’ में लिखते हैं कि ‘1915 में जब गांधी दक्षिण आफ्रिका से आए तो अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा, अखिल भारतीय स्तर पर का संगठन बन

चुका था, पर उसकी दो सीमाएँ थीं, पहली यह थी कि उसके कारोबार शहरों में केंद्रित थे। दूसरी सीमा यह थी कि सभा के कार्य अंग्रेजी में चलाया करते थे। इसलिए ही सभा का सामाजिक आधार मज़बूत नहीं बन पाया था। वह अंग्रेज़िदा लोगों का एक खेमा मात्र रह गया था। गाँधीजी ने प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से सभा में बहस करने का कार्य प्रारंभ किया और तत्संबंधी निर्णय लेने के निदेश दिए। प्रादेशिक भाषा में काम करनेवाले प्रादेशिक संगठन कायम हुए। साथ ही दलित-स्त्री-किसान को सभा के कार्यों में जुड़ने का आह्वान किया। इसके समानांतर समाज की कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष प्रारंभ किया गया तथा हिंदू-मुस्लिम के बीच सौहार्द लाने का प्रयत्न किया गया। इस मूल्यात्मक परिवर्तन से देशी भाषाओं में तकरीबन 1920-30 के आसपास अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। विचार के प्रचार की एकोन्मुखता खत्म हुई और उसका स्थान विचारों के बहुमुखी विस्तार ने लिया। गाँधीजी के इस भाषिक परिवर्तन से भारतीय जन के विविधात्मक अस्तित्व संबोधित हुए और उपनिवेशी सत्ता के विरुद्ध के समर ने महाआंदोलन का रूप धारण कर लिया।² इससे भारतीय राजनीति का समीकरण बदल गया। पहले राजनीतिक निर्णय ऊपर से लिए जाते थे और वह नीचे तक जाता था। अब वह क्रम बदल गया, निर्णय नीचे से लिया जाने लगा और वह ऊपर की तरह जाने लगा। इसके मूल में समाज के सूक्ष्म सांस्कृतिक-राजनीतिक अवबोध की चिनगारी थी, पर गांधीजी के पश्चात् ऐसी आतुरताएँ कहाँ रह गई हैं, सोचने की बात है। विद्यानिवास मिश्र बाद के समय में हिंदी भाषा के भीतर विकसित अलोकतांत्रिकता व भाषिक अधःपतन का पर्दाफाश करते हुए अपनी रचना ‘हिंदी और हम’ में लिखते हैं कि “अंग्रेजी के बघार के बिना हिंदी बड़ी गंवारू लगती है, मगर यह बघार केवल शब्दों के उधार तक सीमित रहती तो कोई बात नहीं

थी। कुछ हद तक हिंदी बाहर के शब्दों को पचाने की क्षमता रखती है। परंतु अब अंग्रेज़ी का वाक्य-विन्यास हिंदी को जकड़ रहा है। अंग्रेज़ी का मुहावरा हिंदी में अनूदित होकर आ रहा है। हिंदी को अंग्रेज़ी का प्रतिरूप बनाने के लिए कई सरकारी उपक्रम लगे हुए हैं। यह हिंदी कैसी अस्मिता बनाएगी? या तो आदमी हिंदी एकदम छोड़कर अंग्रेज़ी की ओर जाएगा, भले ही वह अंग्रेज़ों की समझ में न आनेवाली अंग्रेज़ी हो, या फिर मनमानी भाषा का प्रयोग करेगा। हर आदमी भाषा के बारे में स्वयंभू हो जाएगा। उसे अपने संप्रेष्य समाज की चिंता नहीं रहेगी।”³ हमारे सांस्कृतिक मंडल में प्रचलित है कि अंग्रेज़ी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर के वाणिज्य-व्यापार-ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। यहाँ के अंग्रेज़िदां लोग यह बता रहे थे और हैं कि अंग्रेज़ी भाषा को हमारे देश की राष्ट्रभाषा या सांस्कृतिक व्यवहार की भाषा के रूप में अमल में लाया जाए तो भारत के लिए कितना अच्छा होता। इसका उत्तर इतना है कि भाषा अंतश्चेतना व आत्मोन्नयन का साधन है। सूचना का संकलन एक मशीनी क्रिया है, लेकिन ज्ञान का क्रियात्मक प्रसार अलग बात है। भाषा के संवेदनात्मक-ज्ञानात्मक आधार की अपकृष्टता गाँधीजी के लिए हिंसा है। गाँधीजी की इच्छा थी कि जितने सारे नवजागरण के अगुए हुए, यदि सब के सब भारत की भाषाओं में लिखते, उसके माध्यम से अपने विचारों का प्रचार-प्रसार करते तो भारत का नक्शा भिन्न होता, हमारी सांस्कृतिक प्रतिभा विकसित होती, भारत की निज भाषाएँ अधुनातन ज्ञान की विविधता को वहन करने की क्षमता प्राप्त करती, उच्च चिंतन की अभिव्यक्ति संभव हो पाती, भाषा की शब्द संपदा व चिंतन-मनन की सूक्ष्मता विकसित होती, जीवन की वैचारिकता-क्रियात्मकता का विस्तार होता।⁴ गाँधीजी प्रादेशिक भाषाओं के अभ्युदय के साथ अखिल भारतीय स्तर पर बहुतायत लोगों के बीच के संपर्क की भाषा के रूप में हिंदुस्तानी या हिंदी को स्वीकार करते हैं। गाँधीजी ‘राष्ट्रभाषा पर विचार’ (थॉट्स ऑन नेशनल लैंग्वेज) शीर्षक अपनी रचना में

बीच-बीच में हिंदी या हिंदुस्तानी या कभी एक साथ दोनों का इस्तेमाल करते हैं। ऐसा होते हुए भी गाँधीजी एक ही अर्थवत्ता के साथ उनका प्रयोग करते दिखाई देते हैं। हिंदुस्तानी कौम की आम जनता, यानी अशिक्षितों, स्त्रियों, दलितों, अस्पृश्यों आदि की भाषा है। आपके लिए ‘राष्ट्रभाषा’ वह है, जो बहुतायत लोगों की समझ में आनेवाली हो, वह लिखाई-पढाई में सरल हो तथा धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों के विनिमय की भाषा हो।⁵ जीवन में ऐसी परिस्थिति भी आई थी कि गाँधीजी को हिंदुस्तानी के स्वरूप को स्पष्ट करना पड़ रहा था। ऐसे अहम वक्त में भी अपनी सत्यवादिता का परिचय देते हुए गाँधीजी ने कहा था कि हिंदुस्तानी उत्तर भारत के हिंदुओं और मुसलमानों द्वारा बोली जानेवाली भाषा है और वह देवनागरी व फारसी लिपि में लिखी जाती है।⁶ गाँधीजी के लिए फारसी, अरबी, संस्कृत आदि शब्दों से लदी-फली भाषा का नाम हिंदुस्तानी है। वह सांस्कृतिक समन्वय व बहुभाषिकता का प्रतीक है। हिंदुस्तानी आपके लिए हिंदी और उर्दू की संतान है। गाँधीजी के लिए भाषा जनता का आधार ली हुई होती है। आपका कहना है कि जनता की भाषा रूपी गंगा जनता रूपी हिमालय से निकलती है। आपके लिए हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप गंगा-यमुना का संगम है, पवित्र तीर्थ है। आपका दिल हमेशा यही कहा करता था कि सूर और शिबली नोमानी की भाषा कभी नहीं मरती है। उनका आग्रह यही था कि विभिन्न भाषिक समुदाय भारत में सौहार्द के साथ रहें। यह सौहार्द अहिंसा की तेजस्विता का प्रमाण है। वे सांप्रदायिकता के विष से समाज के शरीर को विषाक्त नहीं बनाना चाहते थे। गाँधीजी जानते थे कि सांप्रदायिकता अन्य के विद्वेष पर अडिग है। वही घृणा, ईर्ष्या, प्रतिशोध, हिंसा, संघर्ष आदि का स्रोत है। गाँधीजी समाज को बीमार नहीं बनाना चाहते थे। आपका यह दृढ़ संकल्प अहिंसा का उज्ज्वल प्रमाण है। आपके भाषा-दर्शन में संकीर्णता की दुर्गंध नहीं रहती है। इतिहास इसका भी साक्षी रहा है कि हिंदी-उर्दू के शिक्षित वर्ग जानबूझकर भाषा को दूरूह बना रहे थे। गाँधीजी की शिकायत यह रही है कि कुछ लोग उर्दू

को अरबी-फारसी के निकट ले जा रहे थे तो कुछ लोग हिंदी को संस्कृत के निकट ले जा रहे थे। गाँधीजी का दर्शन यही बताता है कि “राष्ट्रभाषा का सीधा अर्थ है राष्ट्र की वह भाषा, जिसके माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र में विचार-विनिमय एवं संपर्क किया जा सके। जब किसी देश में कोई भाषा अपने क्षेत्र की सीमा को लांघकर अन्य भाषा के क्षेत्रों में प्रवेश करके वहाँ के जनमानस के भाव और विचारों का माध्यम बन जाती है, तब वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्थान प्राप्त करती है।”⁷ कृष्णदत्त पालीवाल हिंदी भाषा के बृहद् स्वरूप की चर्चा करते हुए कहते हैं कि “मैं यहाँ हिंदी-साहित्य का भजन-कीर्तन नहीं करूँगा, लेकिन यह अवश्य ध्यान दिलाऊँगा कि जिस हिंदी में भारतीय साहित्य की अस्मिता की खरी खनक नहीं है वह हिंदी का साहित्य नहीं है। जिस साहित्य में कबीर, जायसी, मीरा, सूर, तुलसी, रहीम, भारतेन्दु, निराला, प्रेमचन्द, मुक्तिबोध और अज्ञेय एक समवेत लय में बोलते हैं, वह मनुष्य को जोड़नेवाला मानवता का उदात्त स्वर है, जिसमें प्रेम ही परम पुरुषार्थ है। इस भाषा साहित्य में पश्चिमवाद का ‘अंदर’ या ‘अन्य’ नहीं है, केवल ‘आत्म का विस्तार’ है। आत्म-दर्शन की विश्वदृष्टि है। यह विश्व-दृष्टि का नाम लेकर ‘ग्लोबलाइजेशन’ की बाज़ार व्यवस्था या मंडी मार्केट की दृष्टि नहीं है, जिसमें व्यापारोन्माद की छलना है।”⁸

गाँधीजी कहा करते थे कि जीवन की समृद्धि बचपन के जीवन के भाषिक परिवेश की समृद्धि के साथ सीधा संबंध रखती है। शिक्षाविद् यह बताते हैं कि बच्चों की ज़िंदगी के क्रमिक विकास में मूर्त अवधारणाएँ अमूर्त होती चली जाती हैं। यही विकास व्यष्टि-समष्टि की सर्जनात्मकता की नींव बनता है। इसके बल पर मानव अपनी सामाजिक क्रियाओं का सुगमतापूर्वक विन्यास करता है। यही विन्यास समाज की रचनात्मकता है। इसलिए शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा की अहमियत को गाँधीजी प्रारंभ से ही स्वीकार करते थे। आपकी धारणा यही रही है कि इससे मानव की सांस्कृतिक-मानसिक-बौद्धिक उन्नति

उत्तरोत्तर संभव हो पाएगी। वे यह भी जानते थे कि हर भाषा में ज्ञान के संवहन की क्षमता है और वह प्रयोग से निरंतर बढ़ती है। हकीकत यह है कि भारतीय भाषाएँ उपनिवेश के काल में प्रयोग के विभिन्न क्षेत्रों से बहिष्कृत थीं। इससे भाषा के भीतर की व्यवहारजन्य सत्तात्मकता अदृश्य होती गई, भारतीय जनता के भीतर अपकर्षता की भावना पलती गई, हमारी भाषिक संपदा लुप्त होती गई और उसकी सौंदर्यात्मकता से हम अनभिज्ञ होते गए। इससे ही कोई जनता सांस्कृतिक-सामाजिक पृथक्करण का शिकार बनी, अपनी सांस्कृतिक अस्मिता खोकर कंगाल की स्थिति में पहुँच गई। अपनी अस्मिता को विनष्ट करनेवाला भारतीय का विलायती मन अंग्रेज़ी भाषा का समर्थन कर विश्व नागरिक होने का दावा उपर्युक्त मानसिक धरातल पर पहुँचने के बाद ही कर सकता है। यहाँ से हमारे भाषिक-सांस्कृतिक अधःपतन का श्रीगणेश होता है। यह नैतिक गिरावट हिंसा की जीर्णता-शीर्णता है। यह हम भूल जाते हैं कि मातृभाषा की दक्षता के बल पर अन्य भाषा में मानव आसानी से प्रवेश कर सकता है, वह अपने समाज के साक्षात् स्थल-काल से जुड़ जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी किसी भी हालत में कोलोनियल स्वत्व पर गर्व नहीं करता है या काल्पनिक यजमानत्व को प्रदर्शित नहीं करता है। भले ही इस बात पर चूक हुई हो, अविलंब हम अपनी भाषाई विरासत और सांस्कृतिक बहुलता, अस्मिता का ग्रहण करें। अब हम यह पाते हैं कि भारतीय भाषाओं की गरिमा को नष्ट करने का कार्य हमारी बेसुधी है। इसके वशीभूत होकर हमने अपनी वैचारिक क्षमता-विरासत को गिरवी में रख दिया। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है- “आज भारतीय विद्याओं की जैसी विवेचना और विचार अंग्रेज़ी भाषा में है, उसकी आधी चर्चा का भी दावा कोई भारतीय भाषा नहीं कर सकती। यह हमारी सबसे बड़ी पराजय है। राजनीतिक सत्ता के छिन जाने से हम उतने नतमस्तक नहीं हैं, जितने अपने विचार की, तर्क की, दर्शन की, अध्यात्म की अपनी सर्वस्व भाषा छिन जाने से अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम अपनी ही विद्या को अपनी

बोली में न कह सकने के उपहासास्पद अपराधी है। यह लज्जा हमारी जातीय है।⁹ गाँधीजी इस पराजय से बिल्कुल परिचित थे। इतिहास हमें यह भी बता देता है कि राष्ट्र के विकास के परिप्रेक्ष्य में भाषाई योजना का क्या महत्व होता है। अंग्रेज़ी का संबंध हमारी संस्कृति से नहीं रहा है। सामान्य भारतीय नागरिक उस भाषा पर सामान्य अधिकार स्थापित करने के लिए वर्षों की साधना करता है या उसे करना पड़ता है। यदि अंग्रेज़ी के लिए मातृभाषा की कुरबानी की जाएगी, तो उसके लिए हमें अपनी आंतरिक-बौद्धिक उन्नति की उपेक्षा करनी पड़ेगी, वह सांस्कृतिक आत्महत्या बन जाएगी, प्राकृतिक वातावरण में शिक्षार्जन करने के मानव के नैसर्गिक मानवीय अधिकार का तिरस्कार समझा जाएगा, बौद्धिक ऊर्जा के अपव्यय का कारण बन जाएगा। ऐसा मानव सांस्कृतिक अकेलापन में जीने के लिए विवश होता है। भारतीय जनता के कल्याण की भावना से प्रारंभित भाषाई बहस अब कहाँ पहुँच गई है, जानने के लिए पालीवाल का कथन पर्याप्त है। 'भारत की बहुभाषिकता और हिंदी की स्थिति' शीर्षक रचना में वे लिखते हैं- "इधर के हिंदी के समर्थकों ने इस बुनियादी बात को भुलाकर हिंदी का अहित किया है। अपने हिंदी समर्थन को उन्होंने ऐसा रूप दिया है, जिसे लेकर भारतीय भाषाओं में हिंदी के प्रति शंका और विरोध का भाव पनपा है। हिंदी के समकालीन समर्थकों ने भी अपने चिंतन में से इस बात या विचार (हिंदी भारतीयता की वाणी है) की उपेक्षा की है कि हिंदी समग्र भारतीय राष्ट्रीयता की भाषा है...हमारी सांस्कृतिक अस्मिता विदेशी संस्कृतियों की नकल से नहीं बन सकती। गाँधीजी ने हिंद स्वराज में अंग्रेज़ी संस्कृति-सभ्यता को शैतान सभ्यता, चाण्डाल सभ्यता कहा और उससे बचने का संदेश भी। यह भी कहा था कि भारत को अंग्रेज़ों ने नहीं, भारत के अंग्रेज़ी पढ़े बुद्धिजीवियों ने गुलाम बनाया है।"¹⁰

प्रसंगवश बेलजियम और श्रीलंका द्वारा अपनायी गई भाषाई-योजना पर दो शब्द बताना

चाहूँगा। 'बेलजियम में तीन भाषाओं को, यानी डच (उनसठ प्रतिशत), फ्रेंच (चालीस प्रतिशत) जर्मन (एक प्रतिशत) भाषाओं को समान सम्मान प्राप्त है। इससे समाज के तनाव का क्षरण होता है, सर्वतोन्मुखी विकास का रास्ता प्रशस्त होता है। यह नीति सामासिक संस्कृति का अंगीकार करती है और समृद्ध-समरसपूर्ण राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक जीवन को संभव बनाती है। इसकी तुलना में श्रीलंका ने अपनी भाषा नीति में अठारह प्रतिशत जनता द्वारा बोली जानेवाली तमिल भाषा को सत्ता के बल पर शासन से निष्कासित करते हुए ऐसी नीति अपनाई कि जिससे तमिल भाषा-भाषी को सत्ता की अवमानना झेलनी पड़ी और इसकी प्रतिक्रिया में श्रीलंकाई समाज में अशांति उभरती गई। इसके परिणाम स्वरूप श्रीलंका राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों से शतकों से पिछड़ा हुआ है। भाषाई नीति-सत्ता जनता-राष्ट्र के उद्बन्धन-उत्थान में कहाँ तक सहायक है, इतिहास सिखाता है।'¹¹ इतिहास के पन्नों में यह भी सुरक्षित है कि तत्कालीन समाज के सत्तात्मक श्रेणीकरण के खिलाफ बुद्ध ने समता पर आधारित विराट दर्शन को सामने रखा, इसके लिए भारत ने उन्हें बाहर कर दिया, और भारत के बाहर वे बहुस्वीकृत हुए। इसी तरह गाँधीजी ने भी विराट अहिंसात्मक दर्शन को भारतीयों के सामने रखा। भला मन चाहता है कि गाँधीजी को बुद्ध की भाँति हम बहिष्कृत न करें। वक्त अहम है, हम राष्ट्रपिता से कुछ सीख लें, यही भाषा के नीति-निर्धारकों से निवेदन है।

संदर्भ:

1. द्विवेदी, महावीर प्रसाद. हिंदी भाषा. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. 1995, पृ. 51.
2. गुहा, रामचंद्र. जनाधिपत्यवादिकलुम विमतरुम. अनु. के. सी. विल्सन. (डेमोक्रेट्स एंड डिसेंटेस) कोट्टयम: डीसी बुक्स. 2016, पृ. 23-24.
3. मिश्र, विद्यानिवास. हिंदी और हम. नई दिल्ली: ग्रंथ अकादमी. 2001. पृ. 12.

4. Gandhi, M.K. Towards New Education. Ahmmedabad% Navajivan Publishing House- 1933. P- 12. https://www.mkgandhi-org/ebks/new_edu-pdf
5. <https://www.gandhiashramsevagramorg/my&dream&india/chapter&50&national&language&script-php>
6. From Gandhiji's presidential address at the Second Gujarat Educational Conference held at Branch on 20th October. 1917.
7. कौर, हरदीप. राष्ट्रभाषा की अवधारणा और गांधी. सहृदय. अप्रैल-सितंबर 2017 (अंक 32-3): 132.
8. पालीवाल, कृष्णदत्त. भारत की बहुभाषिकता और हिंदी की स्थिति. गवेषणा. जुलाई-सितंबर 2009. (अंक 95-6):145

9. वर्मा. निर्मल. साहित्य का आत्मसत्य (उद्धृत). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. 2017, पृ. 95.
10. पालीवाल, कृष्णदत्त. भारत की बहुभाषिकता और हिंदी की स्थिति. गवेषणा. जुलाई-सितंबर 2009. (अंक 95-6):145
11. Democratic Politics II- Text book in Political Scheme for Class X- Power sharing- New Delhi, National Council for Teacher Education and Training- 2021. P. 2-4.

◆ प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय, केरल -673635
मो.9446661250
ई-मेल – drhebbbarillath@gmail.com

दाम्पत्य विघटन की मनोवैज्ञानिकता: मन्नू भण्डारी की कहानियों के विशेष सन्दर्भ में



मन्नू भण्डारी की कहानियों का कथानक मध्यवर्गीय समाज के जन - मानस की व्याख्या है। उन्होंने परिवेश में परिवार, यौन संस्कृति

एवं समाज को लेकर पात्रों में होनेवाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में नारी मन की टूटन, घुटन, ईर्ष्या भावना, पारस्परिक अहं आदि को अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी कहानियों में संयुक्त परिवार का विघटन और दाम्पत्य विघटन दोनों समान रीति में विद्यमान हैं। मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की मानसिक स्थिति और शादी - परंपरा का खण्डन आदि मन्नूजी की कहानियों में अभिव्यक्त है। दाम्पत्य विघटन

◆ डॉ. लेखा पी

दाम्पत्य विघटन के भी कई कारण होते हैं। आर्थिक वैषम्य, कामप्रेरक संबंधी बातें, नारी - पुरुष का अहम् आदि विघटन के कारण बन जाते हैं। मन्नू जी की कहानी 'तीसरा आदमी' के दाम्पत्य विघटन के मूल में पत्नी शकुन का आहत मातृत्व तथा पुरुष (सतीश) की पुरुषहीनता का आत्मदाह है। "संशय और द्वंद्व से शकुन के दुःख से दुःखी और एक अज्ञान आशंका से त्रस्त सतीश बस एक ही बात महसूस करता है कि शकुन उससे दूर होती जा रही है - उसके शरीर से भी और मन से भी।"1 यहाँ मन्नूजी ने पुरुष मन के अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' कहानी में दर्शना टी.बी.से ग्रस्त पति की देखभाल करने पर भी

अपने किरायेदार के प्रति आकर्षित होने के कारण पति उसे मार - पीटकर घर से निकाल देता है। “आज इन्होंने घर से निकल जाने को भी कह दिया। आज सब जगह इन्होंने पत्र भी लिखे हैं - माँ भैया और दीदी को... शायद सब मुझसे नफरत ही करने लगे.... मुझे न अपने किए का दुख है, न इस दंड का ... इन सबके बाद मैं स्वयं घर छोड़कर निकल जाती।”² यहाँ मन्नू जी ने प्रेम एवं काम से वंचित नारी का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

‘एक बार और’ कहानी की नायिका बिन्नी कुंज के साथ प्रेम करती है और विवाहपूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करती है। लेकिन वही कुंज दूसरी नारी मधु से विवाह करता है। बिन्नी के साथ मौज करते हुए उसने कुंज से कहा था - बिन्नी, शादी मुझे इतना संकीर्ण नहीं बना सकेगी कि मैं अपने और सारे संबंधों को ही झुठला दूँ। शादी अपनी जगह रहेगी और मेरा तुम्हारा संबंध अपनी जगह। ‘दरार भरने की दरार’ कहानी की श्रुति अपने पति विभु के साथ एडजस्ट करने में असमर्थ होकर अलग रहने को सोचती है। कभी वह कहती है - “झगड़ा क्या होगा नंदी हमारा कभी मैल ही नहीं था। भीतर से कुछ न होकर भी बाहर से निभाए जा रहे थे। पर अब लगने लगा है कि आखिर घर बनाए रखने की हो ऐसी कौन-सी मज़बूरी है।”³ यहाँ लेखिका ने मानव - मन की सूक्ष्म मनोवृत्तियों पर प्रकाश डाला है।

‘आते जाते यायावर’ कहानी में मिताली अविवाहिता एवं प्राध्यापिका है। एक बार उसके एक सहपाठी ने प्रेम के नाम पर मिताली से शारीरिक संबंध किया, पर विवाह और एक नारी से किया। इससे लेकर मिताली ने किसी से मेलजोल नहीं किया। पर एक बार उसकी मुलाकात नरेन से हुई। मिताली उसके प्रति आकर्षित हुई और नरेन से भी वंचित हो जाती है। इस प्रकार मिताली को अपने पूरे अतीत में घोखा ही घोखा प्राप्त है। इसलिए कहा कि - जो जुड़ता ही नहीं उसके लिए टूटने की अहमियत ही क्या होती होगी भला।

‘कील और कसक’ कहानी में रानी अपने पति

कैलाश से सेक्त की दृष्टि से असंतुप्त है। कैलाश का ध्यान हमेशा अपने व्यवसाय की ओर है, पत्नी पर नहीं। रानी का मन पड़ोस के देवर शेखर की ओर आकर्षित हो जाता है। ऐसे ही शेखर की शादी के बाद रानी और शेखर की पत्नी के बीच झगड़ा होता है और रानी को परिवार सहित वहाँ से जाना पड़ता है। कभी-कभी रानी चीख-पुकार करती थी कि - “अब क्या भले आदमी इस घर में रह सकेंगे। अपने घर में एक छित्राल बिठा रही है तो सबको छित्राल ही समझ रखा है।.... बड़े आए हाथ पकड़नेवाले, ज़रा पकड़कर तो देखें.... ज़रा निकलकर हाथ पकड़ तो सही।”⁴ इस प्रकार मन्नू जी की कहानियों में दांपत्य संबंधी समस्याएँ विद्यमान हैं।

मन्नू जी की ‘बाहों का घेरा’, ‘घुटन’, ‘ऊँचाई’, ‘तीसरा आदमी’ आदि कहानियों में यौन - गोपन का हास देख सकते हैं। ‘बाहों का घेरा’ कहानी की नायिका कम्मो यौन अतृप्ति से दमित कुंठा का शिकार है। मधुरेश के मत में - “बाहों का घेरा” की कम्मो पत्नी है, चौबीस बरस की जबान और सुन्दर युवती, जो प्यापारी पति के कारण, उसके एक बच्चे की माँ हो जाने पर भी, अतृप्त ही बनी रही है। उसके जीवन की यह लालसा कभी पूरी नहीं हो सकी कि वह किसी की सबल बाहों के घेरे में अपने को पीस दे।”⁵ यहाँ मन्नू जी ने कम्मो की काम अतृप्ति के चित्रण के साथ पति के प्रति समर्पण भाव का भी चित्रण किया है।

‘ऊँचाई’ कहानी में नायिका शिवानी पति शिशिर के होते हुए भी प्रेमी अतुल से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है। अतुल से उसका कहना कि “तुम्हारे सिवाय और कोई बात ही मन में नहीं थी। शरीर पर चाहे वह छाया हुआ हो, पर मन पर तुम केवल तुम ही छाए हुए थे।”⁶ इस कहानी में पति-पत्नी के बीच के टूटे संबंधों का चित्रण है। ‘घुटन’ कहानी में एक ओर पति की तीव्र कामेच्छा से घुटित पत्नी का वर्णन भी है।

विवाह पूर्व यौन-संबन्ध

यौन संबंध केवल विवाहित जीवन पर ही आधारित नहीं, बल्कि आधुनिक पीढ़ी इसे विवाहपूर्व ही स्वीकार करती है। इस प्रकार की समस्यावाली कहानियाँ हैं - 'स्त्री सुबोधिनी', 'एक बार और', 'अभिनेता', 'ऊँचाई', 'बन्द दराजों के साथ' आदि। 'स्त्री सुबोधिनी' की नायिका मैं अपने प्रेमी को विवाहित जानते हुए भी उसके प्यार-जाल में फँस जाती है। 'एक बार और कहानी' में नायिका बिन्नी और कुंज का यौन संबंध स्वच्छंद है। दोनों अविवाहित हैं, पर बाद में कुंज विवाहित हो जाता है, फिर भी बिन्नी से संबंध बनाये रखता है। बिन्नी के अंतर्द्वंद्व के संबंध में डॉ. देव कपूरिया का कथन देखिए - "इसमें प्रथम प्रणय में पुरुष से पराजित नारी के हृदय में एक बार और उत्पन्न होनेवाली प्रणयाकांक्षा का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमें प्रेम, सेक्त और सौंदर्य की जो तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त हुई हैं, वे वर्तमान युग में विद्यमान एतिद्विषयक असंतोष, अविश्वास, कुंठा, दमन, विकृति, विघटन और बिखराव के ही प्रमाण हैं। आज के युग में नर-नारी के प्रेम एवं सौंदर्य-विषयक संबंधों की विषमता का चित्रण मन्नू जी ने बड़ी स्पष्टता तथा निर्भीकता से किया है।"⁷ यहाँ मन्नू जी ने नारी जीवन के प्रेम - संबंध का रोचक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

'बंद दराजों के साथ' कहानी में अपनी पत्नी मंजरी के साथ विपिन का दांपत्य जीवन सुखी है, फिर भी वह और एक युवती से शारीरिक संबंध रखता है। "विपिन ने केवल अपनी ज़िंदगी को ही टुकड़ों में काटा है कि आगे उसे सारी ज़िंदगी ही इन टुकड़ों की अभिशप्त छाया में काटनी होगी कि वह अब भी अपनी संपूर्ण ज़िंदगी में नहीं जी पायेगी।" 'अभिनेता' कहानी में दिलीप विवाहित होने पर भी अविवाहित रंजन से प्रेम का नाटक करता है और उससे शारीरिक संबंध रखता है। दिलीप ने रंजना से कहा था - "कल, मान लो, किसी कारण से मैं तुम्हें नहीं पा सकूँ तो सच कहता हूँ, जान दे दूँ। तुम्हारे बिना तो मैं अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता।"⁹ इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में दिलीप ने

विवाहित और एक लड़के के पिता होने के नाते रंजना के साथ प्यार का नाटक करता है।

मन्नूजी की कहानियों में नारी जीवन की त्रासदी रेखांकित है। आधुनिक नारी के पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन में बढ़ती उलझन, तलाक, यौन जीवन की अतृप्ति आदि नारी जीवन की त्रासदी के कारण हैं। आधुनिक जीवन में दाम्पत्य की असफलता, जटिल जीवन परिस्थिति, तलाक की स्थिति आदि पारिवारिक विश्रंखलताएँ आदि मन्नूजी की कहानियों में उपलब्ध हैं।

संदर्भ

- 1) मन्नू भण्डारी - तीसरा आदमी, यही सच है - पृ. 35; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1966
- 2) मन्नू भण्डारी- तीन निगाहों की एक तस्वीर - पृ.23; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1959
- 3) मन्नू भण्डारी - दरार भरने की दरार, त्रिशंकू - पृ. 22; राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 2008
- 4) मन्नू भण्डारी- कील और कसक, मैं हार गई - पृ. 139; राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 1957
- 5) मधुरेश - नयी कहानी - पूर्णविचार - पृ. 147; नाशनल पब्लिशिंग हाउस, वर्ष-1999
- 6) डॉ. देव कपूरिया - ऊँचाई - एक प्लेट - सैलाब - पृ.147; राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 1938
- 7) डॉ. देव कपूरिया - हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य तत्व का निरूपण - पृ.331; आशा प्रकाशन गृह, वर्ष 1996
- 8) मन्नू भण्डारी - बंद दराजों के साथ - एक प्लेट सैलाब - पृ. 31; राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 1938
- 9) मन्नू भण्डारी - अभिनेता - मैं हार गई - पृ. 87 -88; राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 1957

◆ सहायक प्राध्यापक

पद्मशिशराजा एन.एस.एस. कॉलेज

मट्टनूर, कन्नूर, केरल।

फोन - 9446739173

सरहदें लाँघती स्त्री की कहानी - रेत समाधि



हिन्दी कथा साहित्य में गीतांजलि श्री अपने मौलिक सृजन के कारण विशिष्ट पहचान बनाती हैं। उनके पाँच उपन्यास और पाँच कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

उनका बहुचर्चित उपन्यास है 'रेत समाधि' जो सन् 2018 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास फ्रेंच, अंग्रेज़ी, मलयालम आदि भाषाओं में अनूदित भी हुआ है। 2022 के अन्तर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से प्रशोभित गीतांजलि श्री का विख्यात उपन्यास है 'रेत समाधि'। श्रीमती डेज़ी रॉकवेल ने इसका अँग्रेज़ी भाषा में 'टॉम्ब ऑफ सैंड' नाम से अनुवाद किया है। उन्होंने उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, उपेन्द्रनाथ 'अशक' आदि कई लेखकों की रचनाओं का भी अनुवाद अंग्रेज़ी में किया है। यह अनुभूति, भाव एवं आस्वादन की दृष्टि से एक भिन्न प्रकार की रचना है। 'रेत समाधि' उपन्यास देश-विदेश के पाठकों में बहुचर्चित तथा लोकप्रिय हुआ है।

कथ्य पक्ष के समान इसका शिल्प पक्ष भी अत्यंत आस्वाद्य है। कथालोक का फैलाव अत्यन्त विस्तृत है, भारत से लेकर पाकिस्तान तक है, जिसकी सम्बद्धता एक ओर वर्तमान से है तो दूसरी ओर अतीत से है। बहुस्तरीयता व बहुस्वरता है। संरचनात्मक वैविध्य लिए उपन्यास का फलक बहुआयामी है। गीतांजलि श्री अपने समय व समाज के नये स्पन्दनों को सुननेवाली तथा नये अछूत पात्रों का सृजन करनेवाली अनोखी कथाकार हैं। धीरे-धीरे पढ़कर ही इस उपन्यास का आस्वाद पाया जा सकता है। इसमें समय और समाज की मानसिकता व स्थितियों की जो तस्वीर उभरती है, उसे थोड़ा भी हल्केपन से नहीं लिया जा सकता।

'रेत समाधि' फ्लैश बाक पद्धति में रचित एक कथा है। इसमें अस्सी वर्षीय वृद्ध माँ अपने पति की

◆ डॉ. गायत्री एन

मृत्यु के बाद, जिसे अपने बेटे-बहू, पोते-पोतियों से भरे-पूरे परिवार में खुशी के साथ रहना था, उससे वे मुँह मोड़ लेती हैं, पर वे जीवन से मुँह नहीं मोड़ती हैं। घोर उदासी से भरी वे दरवाज़े की तरफ पीठ दिए बीमार-सी लगतीं और बिस्तर पर पड़ी रहतीं। लेकिन उनका मन सुषुप्त नहीं रहा, वे भीतर-ही-भीतर कुछ गुनगुनाती रही थीं। एक दिन वह वृद्ध स्त्री दुग्ने-तिगुने उत्साह से भरकर युवा जैसी बनीं, एकदम नये रूप में ताज़गी लिए बिस्तर से उठ खड़ी हुई। वह दादी माँ को एक छड़ी देता है। दादी उससे भी ज़्यादा 'अनंत स्वतंत्रता' की आशा लिए धरती ही नहीं आकाश छूने की ललक लिए एक नये तेवर में पुराने स्त्री-खोल से बाहर निकलती हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज में दबी हुई वे खोये वजूद को दृश्यमान करती हैं। वे ज़िंदगी को अपने नज़रिये से जीने की चाहत लिए उपस्थित होती हैं। 'रेत समाधि' के ज़रिए पूरे देश की स्त्रियों की स्वतंत्रता की चाहत को, अव्यक्त आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने में लेखिका सफल हुई हैं। बुढ़ापे में भी 'जीने की ललक' का बने रहना अहम् बात होती है।

उपन्यास के तीन हिस्से हैं-पीठ, धूप और हद-सरहद। 'पीठ' दिए सोई माँ उठीं तो 'धूप' तक आते-आते युवती हो जाती हैं, बेटी उम्रदराज। "छोटी होती औरत सीटी ऐसे ही बजाती है जैसे रेगिस्तान में हवा बहती है। बिना कहीं टकराये और धीमे-धीमे रेत की परतें उड़ती हैं, समाधिस्थ आकार उभरते हैं।" समाधिस्थ-सी हुई माँ में उधेड़-बुन ज़ारी रहता है। प्रेमजन्य उच्छ्वल भावावेगों से समाधि की स्थिति में उनके स्वयं के पड़े रहने की बात ज़रूर आती है, लेकिन यह तो 'समाधि' रेत समाधि है, जिससे थोड़ी-सी रेत की परतें हटती तो समाधि से आकार उभरने

लगते हैं।

'रित समाधि' उपन्यास अपने कथ्य और शिल्प में नवीनता तथा ताज़गी का बोधक है। यह उपन्यास परम्परागत कथा लेखन के ढाँचे को तोड़ता है तथा नई चुनौतियों को स्वीकारता हुआ यह देश-विदेश की हृद-सरहृद तक विस्तृत परिक्रमा करता है। लेखिका ने उपन्यास की कथा को संयोजित तथा सूत्रों में बाँधने के लिए प्रतीकों तथा बिम्बों का भरपूर प्रयोग किया है। कथा के विशेष अंग बने हैं-कौआ, तीतर, चिड़िया, पेड़, फूल, पत्ती और छड़ी आदि। संयुक्त परिवार में माँ-बेटी, माँ-बेटा और माँ-बहू तथा अन्य नाते-रिश्ते समय-परिस्थितियों के अनुसार बदलाव रखते हैं। उपन्यास की कथा में संयुक्त परिवार के प्रसंगों, इनके जीवन से जुड़े हुए अनेक किस्सों, उनकी मार्मिक घटनाओं, देश-विदेश के नए चरित्रों, लोक समाज के पात्रों, देश बँटवारे का दर्द, देश विभाजन के वर्तमान तथा अतीत के अनेक प्रसंगों, सरहृद की दीवारों, मध्यवर्गीय परिवारों के नाते-रिश्तों, पितृ सत्तात्मक समाज के ढाँचे, स्त्रीवादी विमर्श, लैंगिक असमानता, ट्रांसजेण्डर समुदाय, पर्यावरण तथा प्रकृति के संकट, लिव इन रिलेशन, समलैंगिकता, राजनैतिक-सामाजिक विद्रूपताओं, इतिहास-पुराण के सरोकारों, देवी-देवताओं के मिथकों, शहर-देहात के अनेक किस्सों, बाज़ार, गलियों, मॉल आदि के चित्रों, प्रकृति और पशु-पक्षियों के अनेक सन्दर्भों आदि से बृहत् आयाम उद्घाटित हैं।

'रित समाधि' उपन्यास में उच्च मध्यवर्गीय परिवार की नयी-पुरानी पीढ़ी के आंतरिक अन्तर्विरोधों, दैनंदिन की नोक-झोंक, भावनात्मक नाते-रिश्ते की मार्मिक भाव-व्यंजना, आपसी संबंधों के लगाव तथा अलगाव, स्वप्न तथा दमित कुंठाएँ, अवसाद और अकेलापन, संताप और अतृप्त इच्छाएँ

आदि के रूप प्रस्तुत हैं। उपन्यास की वृद्ध स्त्री चन्द्रप्रभा विधवा हो गई है। पति के गुज़र जाने पर वह अपने पूरे परिवार से पीठ कर लेती है। यह अस्सी वर्षीय वृद्धा न केवल अपने जीवन में गंभीर, जिम्मेदार और कर्मठ रही है, बल्कि पूरे परिवार के साथ घनिष्ठ संबंधों से बँधी रही है। वह साधारण स्त्री होते हुए भी असाधारण प्रतीत होती है। पति की मृत्यु के संताप ने उसे अकेला, सिकुड़ी हुई गठरी-सी, घर की दीवार में धँसी हुई और परिजनों से विमुख अंधी-बहरी बना दिया। उपन्यास के प्रारंभ में उसकी असहाय स्थिति के अनेक प्रसंग उभरते हैं- "मरती जाती, आँख नाक बंद, कान ठप्प, मुँह सिला, मन सुन्न, अरमान नदारद, पखेरू उड़।"² वृद्ध माँ की उन शब्द-ध्वनियों में मन का अवसाद, निषेध का भाव और जड़ता उभरती है। उसे न खाने की इच्छा होती है, न सर्दी की धूप में बैठने की चाह है, न अपने पोते सिड (सिद्धार्थ) की अँग्रेज़ी भाषा की मीठी बोली और उसके गिटार की संगीत-ध्वनि सुनने का ध्यान है। वह अपने जीवन के इस मोड़ पर उकता गई है। उसके बेटे के घर का वातावरण उन्मुक्त तथा स्वच्छंदता से भरा रहा है। उपन्यास की कथा में वृद्ध माँ दिन-प्रतिदिन छोटी होती गई है। उसकी बेटी अपनी उम्र के हिसाब से स्वतंत्र, स्वकेन्द्रित और समृद्ध हो रही है।

उपन्यास की बृहत् कथा में माँ-बेटे के रिश्ते नए अर्थों को व्यंजित करते हैं। कभी वृद्ध माँ पूरे परिवार की केंद्रबिंदु थी। सुबह से संध्या तक पूरा घर उससे ऊर्जा ग्रहण करता था। लेकिन अब बेटा-बहू और बेटी की साँस जैसे रुक रही है। वह वृद्धा कब अपने नित्य जीवन में लौटेगी। कब घर-परिवार तथा आस-पड़ोस में खुशी की लहर दौड़ेगी। अभी वृद्ध स्त्री के जीवन का नैसर्गिक स्वरूप बंद किया हुआ है। उपन्यास की कथा में वृद्ध माँ के जीवंत और अछूते प्रसंगों को काव्यात्मक बिम्बों और शब्दों के चित्रों में मूर्त किया गया है। उपन्यास में वृद्ध माँ समाधि की स्थिति में पहुँच चुकी है। उसके जीवन का बाहरी

कोलाहल घट चुका है। लेखिका ने सूक्ष्म मनोभावों से उसकी शारीरिक-मानसिक दशा का यथार्थ अंकन किया है। उसकी पीठ घिसती जाती है तथा रेत में मिलने को विवश होती है। वह रेत पर चलती-फिसलती तथा रेत कण के संग उड़ने लगती है। उसके मुँह से सीटी के स्वर निकलते हैं तथा अनजान दुनिया में लहराते हैं तथा हवा के साथ घुल-मिल जाती है। उपन्यास में लेखिका ने वृद्ध माँ की समाधि की ओर जाते हुए दिखलाया है- 'सरक जाए, लुढ़क जाए, वो आज्ञाद होती जाए, वो छोटी होती आए, वो हल्की होती जाए। इतनी हल्की कि वो रेत के भीतर से उठने लगे। जैसे समाधि से।'³ उपन्यास के कथ्य में घर और प्रकृति के अनेक अंग हैं। उदाहरण रूप में घर का दरवाज़ा, घर की दीवारें आँगन के पक्षी जैसे-कौवा, तीतर और चिड़िया और प्रकृति के फूल, पत्ती और पेड़ विशेष कथा के सरोकार हैं।

उपन्यास की बृहत् गाथा का दूसरा हिस्सा 'धूप' है जिसकी शुरुआत चिड़िया से प्रारंभ होता है तथा समापन भी चिड़िया से। फूल-पत्ती पहले अंश के भाग थे। बेटी अकेली रहती है, विवाह नहीं किया है और 'लिव इन रिलेशन' में अपने विदेशी पुरुष मित्र के साथ रहती है। वह फ्रीलांसर के पद पर है और दिन-रात में अपना कार्य करती है। वह अम्मा को नया जीवन प्रदान करेगी तथा बेटी के अपने दायित्व का निर्वाह भी करेगी। बेटी का फ्लैट भव्य और कलात्मक सजा से बना है। बेटी के घर में प्रकृति और मनुष्य-सौन्दर्य का सामंजस्य मिलता है। वह अम्मा की सेवा करती है। माँ की गहरी निद्रा टूटती है। प्रातः की रोशनी ने उसमें ताज़गी और जीवंतता के पंख लगा दिए। वह एक दिन छड़ी के सहारे उठ खड़ी हुई। नित्य शरीर की मसाज, स्नान और नित्य गतिविधियों से अम्मा को नया जीवन मिल गया। अम्मा अब धूप की तरह चमकती है। अम्मा की मुद्रा कल्पवृक्ष से निकलकर 'अष्टभुजा' मुद्रा की हो गई है- "देखने लायक थी माँ की अष्टभुजा मुद्रा पर देखता कौन?

सिर्फ धूप। जो सुबह आती, माँ के चेहरे को चुमकारने और फिर माँ उठती और दोनों एक दूसरे को देखती रहती। माँ और धूप।" ⁴ अम्मा दिन-प्रतिदिन छोटी होती जाती। बेटी अपनी अम्मा को गुड़िया की तरह संभालती है। उसमें यौवन की स्फूर्ति, अवचेतन की स्मृतियाँ और अतीत की परछाइयाँ पनप रही हैं। धीरे-धीरे अम्मा अपने घर-आँगन में परिक्रमा करने लगी। माली के साथ फूल-पौधों की देखभाल करती है तथा माँ-बेटी दोनों मिलकर फिल्में देखती हैं। यह बदलाव उसकी ज़िन्दगी को नए भाव से समृद्ध कर रहा था। माँ-बेटी का यह किस्सा यूँ ही चलता रहा है- "बेटी का साँस माँ की लौटती साँस में। बेटी का रंग माँ के पुलकित होते रंग में।"⁵ उपन्यास की कथा गहरे सूक्ष्म मनोभावों, संवेदना के भाव से ओतप्रोत, प्रकृति के रंग में रंगी, मनुष्य के नित्य कर्मों से प्रेरित और मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्घाटन करती चलती है। उपन्यासकार ने काव्यात्मक शब्दों और वाक्यों में बातें कही हैं जो कथा को गति प्रदान करती है।

उपन्यास की गाथा में तृतीय लिंगी समुदाय की उपस्थिति भी है। रोज़ी बुआ, उर्फ रजा टेलर और अन्य तृतीय लिंगी मूलतः जनाना तथा मर्दाना होते हैं। रोज़ी कभी पुरुष भूमिका में रहती है और कभी अपनी सुविधा से स्त्री रूप में बन जाती है। अम्मा और रोज़ी की आपसी योजना पाकिस्तान जाने और पासपोर्ट बनाने की होती है। उसकी मृत्यु पर अम्मा को गहरा दुःख होता है। उपन्यास में बाघा बॉर्डर और देश विभाजन की त्रासदी व्यक्त होती है। भारतीय साहित्य में देश विभाजन की त्रासदी से उपजी मानवीय संवेदना, मानवीय रिश्तों के टूटने के दर्द, साम्प्रदायिक दंगों के जख्म, आगजनी, हिंसा, बलात्कार और हृद-सरहद के मार्मिक किस्से बहुत प्रासंगिक रहे हैं।

उपन्यास में फ़िल्म, चित्रकला, संगीत, प्रकृति, पशु-पक्षी और यात्रा-वृत्तान्त साथ-साथ चलते हैं। रेत समाधि जैसी गद्य रचना को पढ़ते हुए किसी काव्य की अनुभूति के साथ बह जाने जैसे लगता

है। एक स्त्री जो हमारे आस-पास है, उसके जीवन में जो विविधता है, उसी का सौंदर्य यह उपन्यास बखूबी प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने कहानी की शुरुआत में ही जिस दावे को प्रस्तुत किया है, पूरी कहानी लगभग उसी रूप में अपने मुकाम को प्राप्त होती है। उनका दावा है- "एक कहानी अपने आप को कहेगी। मुकम्मल कहानी होगी और अधूरी भी, जैसा कहानियों का चलन है। दिलचस्प कहानी है। उसमें सरहद है और औरतें, जो आती हैं, जाती हैं, आरम्भ और औरत और सरहद का साथ हो तो खुद-ब-खुद कहानी बन जाती है। बल्कि औरत भर भी। कहानी है। सुगबुगी से भरी।" 6 यह दावा पूरे उपन्यास में साथ-साथ चलता है और अंत में सही भी सिद्ध होता है। माना जाता है कि औरतें सीमाओं में बँधी होती हैं और यह कहानी सरहद को भेदकर एक नई कहानी सुनानेवाली स्त्री की कहानी न होकर स्त्री-मुक्ति की असीम संभावनाओं का द्वार खोलने में सहायक सिद्ध

होती है। पाठक के मन को बड़ी आसानी से जीत लेनेवाला यह उपन्यास वास्तव में पूरे हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है।

संदर्भ

1. गीतांजलि श्री -रेत समाधि - राजकल प्रकाशन - नई दिल्ली, 2022, पृ. 261
2. वही , पृ. 13
3. वही , पृ. 65
4. वही , पृ. 129
5. वही , पृ. 137.
6. वही , पृ. 9.

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम।
फोन : 9847287263

'आबे - तौबा' कहानी में अवैध प्रेम - एक दृष्टिपात



साहित्य जन-हित नीतियों को फैलाने का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करती है। युग चेतना को शब्दबद्ध

करने में साहित्यकार की भूमिका अहम होती है। नासिरा शर्मा हिन्दी साहित्य जगत की सशक्त लेखिका हैं। नासिरा जी प्रगतिशील विचारधारा रखनेवाली लेखिका हैं। वे मनुष्यता को धर्म, संप्रदाय या संकीर्ण विचारधारा से ऊपर मानती हैं। अपने साहित्य के माध्यम से नासिरा जी ने समाज की अनेक ज्वलंत समस्याओं को उजागर किया है। परिवेशगत सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं का उन्होंने बड़ी उदारता से समाधान प्रस्तुत किया है। इनकी हर रचना साहित्य जगत में अपना अलग ही महत्व रखती है। उन्होंने

♦ डॉ. धन्या एल

अलग विषयों को अपनाकर कक्षा साहित्य के क्षेत्र में अपना अनुपम योगदान दिया। अपनी रचनाधर्मिता को परिचय कराते हुए नासिरा जी ने कहा है, "मैं कहना चाहूँगी कि उत्पीड़न की समस्या है तो मैं नारी के साथ हूँ। अगर साहित्य का प्रश्न है, तो मैं पुरुष के साथ हूँ, अर्थात् मुख्यधारा में हूँ।" 1

नासिरा शर्मा के अब तक नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- पत्थर गली, संगसार, इन्ने मरियम, शामी कागज़, सबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, इंसानी नस्ल, बुतखाना तथा दूसरा ताज महल इत्यादि। नासिरा जी के कहानी संग्रह में निहित प्रत्येक कहानी की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी की वरिष्ठ लेखिका श्रीमती नासिरा शर्मा का श्रेष्ठ कहानी संग्रह है 'शामी कागज़'। 'शामी कागज़' पुस्तकीय कलेवरबद्ध नासिरा जी की प्रथम रचना है। दिसंबर

1980 ई में प्रकाशित 'शामी कागज़' कहानी संग्रह में कुल सोलह कहानियाँ हैं। नासिरा जी ने 'शामी कागज़' कहानी संग्रह को अपने पिता स्वर्गीय प्रोफेसर जामिन आली के नाम समर्पित किया है। इसमें सभी रंगों और मुद्राओं की कहानियाँ हैं- खुशबू का रंग, मिख की ममी, दादगाह, पतझड़ का फूल, दीमक, परिंदे, आईना, शामी कागज़, आशयाना, आबे-तौबा, सहरा नवरद, उकाव, तलाश, बेगाना ताजीर, मिट्टी का सफर, मुट्टी भर धूप आदि। यह संग्रह नासिरा शर्मा की ईरानी यात्राओं का दस्तावेज़ है। 'शामी कागज़' की कहानियाँ उस जन समुदाय की संवेदनाओं और वेदनाओं की धड़कने हैं जो धरती से जुड़ा आशा और निराशा का संघर्षमय सफर तय कर रहा है। प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ जैसी कहानियाँ हैं जो हालत और जज्बात के कठघरे में खड़ाकर इंसान को ज़िन्दगी से हम कलाम होने का जहाँ मौका देती हैं वही उन्हें दोबारा जीने की प्रेरणा भी देती हैं। इन कहानियों का एकमात्र उद्देश्य नारी की रक्षा, उसको सम्मान और गरिमा प्रदान करना तथा इस धरती पर मानवता को जीवित रखना है। ये सभी कहानियाँ इंसानी भावनाओं का प्रतीक बनकर हर देश, भाषा और संस्कृति का ही प्रतिनिधित्व करती हैं।

आज हमारे समाज की सबसे जटिल समस्या है – मानवीय रिश्ते और मानवीय मूल्य, जो पहले की अपेक्षा जटिल, संकुचित और असत-व्यस्त हो गए हैं। मानवता को केंद्र में रखकर लिखे गए नासिरा जी के कथा साहित्य में नारी की समस्याओं को अधिक प्रमुखता दी गयी है। यथार्थ के विविध रूपों को भी उन्होंने अत्यंत तीखेपन से उभारा है। उनके कथा साहित्य में महिलाओं की यथार्थ दशा, उनकी मानसिकता और उनके घुटन भरे जीवन से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया गया है। कुमार पंकज जी के शब्दों में – 'नासिरा शर्मा उन रचनाकारों में हैं, जिन्होंने महिला मुद्दों को अपनी कलम का निशाना बनाया है। यह सच है कि महिला के दर्द को महिला से बेहतर भला कौन जान सकता है।' नासिरा जी के कथा साहित्य में नारी भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

समय की सीमा ने संबंधों को भी सीमा में

बाँध लिया है। संबंधों के खोखलेपन ने जीवन को संघर्षमय और रसशून्य बना दिया है, क्योंकि मानवीय रिश्तों में प्रेम और ईमानदारी का सर्वथा अभाव है। विवाहेतर संबंध प्रतिदिन बढ़ते दिखाई देते हैं। नारी हमेशा भारतीय साहित्य के केंद्र में रही है। आज साहित्य में नारी-विमर्श में सेक्स का खुला चित्रण हो रहा है। "आज साहित्य में उभरते विविध विमर्शों पर यह आरोप भी लग रहा है कि नारी विमर्श में सेक्स का खुला चित्रण हो रहा है। नारी विमर्श का एक और पहलू यौन विमर्श बन रहा है।" यौन वर्णन में नारी को पुरुष से ज़्यादा महत्व साहित्य ने दिया है। परस्त्री गमन एवं परपुरुष गमन के दृष्टांत साहित्य में मिल जाते हैं। साहित्यकार नारी के यौन विमर्श का अपनी कहानियों में बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रण कर कहानियों की तरफ सबकी दृष्टि को आकर्षित करता है। स्त्री-पुरुष का अपने जीवन साथी को छोड़ अन्य स्त्री-पुरुष की ओर आकर्षण होता है। नासिरा के कथा साहित्य में इस समस्या की अभिव्यक्ति हुई है। सेक्स को विषय बनाने से भी वे परहेज करती हैं। उनके लेखन के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं कि "इंसान को इंसान बने रहने पर प्रेरित करते रहना। अपमान, शोषण, अत्याचार आदि के विरोध में खड़े होने की प्रेरणा देना।" 4 अवैध प्रेम के अनेक कारण हो सकते हैं। कुछ महिलाएँ आर्थिक स्थिति को सुधारने की ललक में अवैध संबंध स्थापित करती हैं। तो कुछ महिलाएँ अपने शारीरिक तृप्ति के लिए। उसी प्रकार पुरुष भी अवैध संबंध स्थापित करते हैं। कारण जो भी हो इसके परिणामस्वरूप अच्छे दाम्पत्य जीवन में दरार आ जाती है।

'शामी कागज़' कहानी संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है 'आबे-तौबा'। अवैध प्रेम की समस्या को, इस वर्तमान सच्चाई को नासिरा जी अपनी कहानी 'आबे-तौबा' में अभिव्यक्त किया है। अवैध प्रेम के कारण पारिवारिक समस्याएँ उत्पन्न होकर जीवन कष्टमय हो जाता है। 'आबे – तौबा' कहानी में नारी के होनेवाले यौन शोषण को चित्रित किया गया है। प्रस्तुत कहानी अनैतिक यौन संबंध रखने के बाद पश्चाताप की अग्नि में जलनेवाली एक औरत की कहानी है। यह कहानी नारी के दिल में पनपे दर्द का इज़हार करती हुई खत्म हो जाती है। इस कहानी में औरत की जिस्मानी भूख का चित्रण है। यह कहानी पछतावे, ग्लानि और आत्म

प्रताड़ना से खुद को माफ न करनेवाली 'सूसन' को हमारे सामने लाती है। नासिरा के कथा साहित्य के प्रत्येक पात्र हमेशा अपने हक की लड़ाई लड़ते नज़र आते हैं। प्रत्येक पात्र सामाजिक संघर्षरत एवं प्रेरणादायक है। इस कहानी की नायिका 'सूसन' ऐसी ही पात्र है। सूसन एक स्कूल में साइकॉलोजिस्ट है। वह शमशाद नामक एक मनोवैज्ञानिक की बातों से प्रभावित हो जाती है और उसकी हवस का शिकार बन जाती है।

कामकाजी स्त्रियों को अक्सर यौन शोषण का सामना करना पड़ता है। जब पुरुष और स्त्री एक स्थान पर काम करते हैं तो सामान्यतः पुरुष औरत के काम और बुद्धि से ज़्यादा उसके औरत होने में दिलचस्पी लेता है। यह सिर्फ कामवासना के कारण है। पुरुष की इस मानसिकता का परिणाम स्त्री पर भी अवश्य होता है। प्रतिक्रिया-स्वरूप या तो वह ऐसे पुरुष से स्वयं को दूर कर लेगी या उसकी कामवासना का शिकार होकर एक प्रकार के अपराधबोध से ग्रस्त हो जायेगी। 'आबे - तौबा' कहानी की सूसन की यही त्रासदी है। वह अपने सहकर्मी की वासना का शिकार बन जाती है। स्कूल में मीटिंग समाप्त होने पर सभी लोग चले गए थे, वही दोनों रह गए थे। जब सूसन ने "पर्स उठाया, थोड़ा पहलू बदलकर उठने का उपक्रम किया और तभी बिना कुछ कहे शमशाद ने एकदम से सूसन का हाथ अपने हाथ में ले लिया... उसने सूसन को अपने समीप कर उसकी गरदन का चुंबन ले लिया। जब तक वह अपने को छुड़ाती, प्रतिरोध करती, सबकुछ इतना आगे बढ़ गया था, जहाँ कोई भी रोकथाम अब अपना अर्थ खो बैठी थी।"⁵

'आबे - तौबा' की सूसन दूसरे प्रकार की नारी है। वह मनोवैज्ञानिक है। वह स्कूल में नौकरी कर रही है- बच्चों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना और उन बच्चों को ग्रंथियों से मुक्त कर अध्ययन के लिए प्रेरित करना था। वह विवाहित है और दो बच्चों की माँ भी। हर लिहाज से उसका पारिवारिक जीवन सुखी कहा जाएगा। उसी स्कूल में एक और मनोवैज्ञानिक है - शमशाद नाम का। शमशाद मन से विकृत है। औरत को वह भोग की वस्तु समझता है। वह धीरे-धीरे सूसन से संबंध बढ़ाने का प्रयास करता है। वह सूसन को बड़ी चतुराई से औरत-मर्द के मनोवैज्ञानिक धरातल पर संबंधों को समझते हुए सेक्स की भावना को

भड़काने का प्रयास करता है। उसकी चतुराई भरे प्रयत्नों के कारण सूसन उसे समर्पित होती है। बाद में वह सूसन को बताता है कि अब तक उसे तीन सौ से अधिक औरतों को भोग है। उसे नित नई स्त्री का भोग लेने की मानो लत लग चुकी है-इसे देखकर सूसन को ठगे जाने का एहसास होता है। उसे लगता है कि वह लूट चुकी है और इसी एहसास से मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। वह आत्महत्या का तक विचार करती है।

नासिरा शर्मा 'आबे - तौबा' कहानी द्वारा बताती हैं कि अवैध प्रेम से स्त्री किस प्रकार अपना जीवन नष्ट करती है। सूसन के माध्यम से यह चेतना भी देती है कि अवैध प्रेम से बचे रहना है। 'आबे - तौबा' की सूसन मन को शांत करने के लिए धार्मिक कार्यों में अपना मन लगाती है, जिसके करने से औरतों का पाप नष्ट हो जाता है- ऐसा विश्वास है। इसी दृष्टि से वह 'आबे - तौबा' जाती है और खुद को पवित्र कर लेती है, अपने द्वारा किए गए पाप के लिए पश्चाताप करती है। स्त्री की पवित्रता विषयक मान्यताओं में विश्व के धरातल पर एक-सी भावना कार्यरत दिखाई देती है। इसी को 'सूसन' की मानसिकता व्यक्त कर रही है। सूसन सजीव रूप में बहक ज़रूर गयी पर पश्चाताप की अग्नि ने मानो उसे पाक कर दिया। उसे अपने बच्चों की चिंता है। वह चाहती है कि अपने बच्चों का विकास अच्छा हो। इसी भावना से उसका अपराध-बोध स्वयं को मुक्त कर लेने में सफल हो जाता है। नासिरा जी के अनुसार 'इंसान की सबसे बड़ी खूबी है कि वह हर जख्म की हर पीड़ा को समय के गुज़रने के साथ बिसरा देता है और जिजीविषा उसको फिर से जीने के लिए तैयार कर देती है।'⁶ समय के गुज़रने के साथ सब भूलने की शक्ति सूसन को भी मिले, यही नासिरा जी चाहती हैं।

पुरुष भी अवैध संबंध स्थापित करते हैं। 'आबे - तौबा' कहानी की सनोबर खानम नामक चरित्र की यही त्रासदी है कि उसका पति स्वयं वृद्धावस्था की कगार पर है, फिर भी वह सनोबर खानम का सहारा बनने के स्थान पर सीगा करते रहता है। सनोबर अपनी व्यथा को सूसन के सामने व्यक्त करती है- "तुम्हारे चाचा ने इस साल यह तीसरा सीगा कल

किया है, वह भी एक यहूदिन से। बच्चे अपने घरों में मस्त हैं ---मरूँ तो जान छूटे।⁷ सनोबर खानम की तरह कई स्त्रियाँ सौतों को अपनाने के लिए विवश दिखाई देती हैं।

निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि यह कहनी अपने विषय, संदर्भ और रूप की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नया प्रतिमान रखती है। नासिरा शर्मा किस प्रकार ज़मीन से जुड़ती हुई यथार्थ की ऊँचाईयों को छूती है, यह नज़र आती है। आपकी रचनाओं में चित्रित स्त्री पात्रों के माध्यम से नारी चेतना का गहन अध्ययन हमें मिलता है और लगता है कि आज भी ये सभी पात्र हमारे चारों ओर मौजूद हैं। 'आबे - तौबा' हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट कहानी है। नासिरा शर्मा 'आबे - तौबा' कहानी की सूसन नामक पात्र के द्वारा आज की महिलाओं को जागरूक करती हैं और उन्हें अवैध प्रेम से बचने की चेतना देती हैं। अवैध संबंध से परिवार बिखर जाते हैं। दाम्पत्य जीवन में दरार पड़ जाती है। अवैध संबंध कानूनी दायरे में भी अनैतिक कार्य है। नासिरा जी अपने यौन विमर्श की कहानी द्वारा समसामयिक नारी के चिंतन और व्यवहार में आए परिवर्तन को रेखांकित करने के साथ नारी को नारी के रूप में समाज में स्थापित कराना भी चाहती हैं। वस्तुतः नासिरा शर्मा हिन्दी की बहुमुखी प्रतिभा की धनी शब्दसाधक हैं, साथ ही प्रत्येक विषय पर सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाली उत्तर शती की प्रभावी लेखिका भी हैं। आज के युग में मनुष्य को स्वाभिमानी बनकर जीवन संघर्ष के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा भी नासिरा जी देती हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम्' पर विश्वास रखनेवाली नासिरा जी की रचनाएँ समाज के लिए बहुमूल्य हैं।

संदर्भ सूची

1. नासिरा शर्मा कृत 'शब्द पखेरू' में उत्तर आधुनिकता, शांतिनी एस आर, विकास प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 39
2. नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में समसामयिक बोध, डॉ. शेख मोहम्मद शाकिर शेख बशीर, अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन वर्ष-2011, पृ. सं. 43
3. 21वीं सदी के साहित्यिक विमर्श, लेफ्टनेंट डॉ. विष्णुदेव मल्लिक, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृ. सं. 149

4. नासिरा शर्मा कृत 'शब्द पखेरू' में उत्तर आधुनिकता, शांतिनी एस आर, विकास प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 39

5. नासिरा शर्मा संकलित कहानियाँ, प्रकाशक-निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013, पृ. सं. 368-369

6. नासिरा शर्मा कृत अक्षयवट उपन्यास: एक मूल्यांकन - डॉ. शगुफ़ता नियाज़, वाङ्मय प्रकाशन, अलीगढ़, प्रकाशन वर्ष -2013, पृ. सं - 42

7. नासिरा शर्मा संकलित कहानियाँ, निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 2013, पृ. सं. 368-369, 359

सहायक ग्रंथ

1. समकालीन हिन्दी उपन्यास, आचार्य (डॉ.) हरिशंकर दुबे, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2021।

2. नासिरा शर्मा कृत अक्षयवट उपन्यास : एक मूल्यांकन, डॉ. शगुफ़ता नियाज़, वाङ्मय प्रकाशन, अलीगढ़, 2013।

3. नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में समसामयिक बोध, डॉ. शेख मोहम्मद शाकिर शेख बशीर, अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, 2011।

4. नासिरा शर्मा के समग्र साहित्य में सामाजिक चेतना, डॉ. शेख सादिख पाषा, गीता प्रकाशन, हैदराबाद, 2022

5. 21वीं सदी के साहित्यिक विमर्श, लेफ्टनेंट डॉ. विष्णुदेव मल्लिक, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2013।

6. नासिरा शर्मा संकलित कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 2013, पृ. सं. 368-369।

सहायक वेबसाइट

1. <https://ignited.in/1/a/89658>

2. [https://www.uok.ac.in/digital-thesis/327-Premlata%Meena%20\(Hindi\).pdf](https://www.uok.ac.in/digital-thesis/327-Premlata%Meena%20(Hindi).pdf)

◆ सहायक प्राध्यापिका एवं अध्यक्षा

हिन्दी विभाग, के एस एम दी बी कॉलेज
शास्ताकोट्टा, कोल्लम

ई मेल: dhanyakrishnakumar2013@gmail.com

महामना मालवीय जी की पत्रकारिता और शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शिता पर एक अध्ययन



◆ 1 पूनम कुमारी, 2 डॉ. अरविन्द कुमार पाल, 3 डॉ. विजेता तनेजा

सार : महामना मालवीय जी का शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान अतुलनीय है। यह महामना की दूरदर्शिता ही थी जिसने ऐसे समय में जब देश गुलाम था और लोगो में जागरूकता की कमी थी तब उन्होने शिक्षा और पत्रकारिता को माध्यम बनाया देश में बदलाव लाने के लिए। अभ्युदय, मर्यादा, हिंदुस्थान, हिंदुस्तान टाइम्स आदि समाचार पत्रों में सम्पादन का कार्य करते हुए उन्होने जनता में अपने देश और समाज के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना जागृत किया। उन्होंने हिन्दी भाषा को भी अदालती भाषा बनाने की भरपूर वकालत की। वाराणसी में स्थित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी स्वप्न का ही परिणाम है। मालवीय जी की भूमिका स्वतन्त्रता-संग्राम में भी उल्लेखनीय रही है। महामना हमेशा भारतीयों के अन्दर जाति, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र आदि के बढ़ते भेदभाव को मिटाकर एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे, जो सर्वशक्तिशाली और संप्रभु है, जिसकी जयगाथा विश्व के हर कोने में हो। एक आदर्शवादी, शिक्षाविद्ध, पत्रकार और स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में प्रसिद्ध महामना ने स्वदेशी आंदोलन का समर्थन करते हुए एक बार कहा था, देश की आर्थिक समस्याओं का निवारण स्वदेशी वस्तुओं को अपना कर ही हो सकता है जो आज के संदर्भ में भी बहुत सटीक बैठता है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्तियों के चरित्र और व्यक्तित्व को आकार देने के साथ-साथ ज़िम्मेदार नागरिक बनाने के साधन के रूप में देखा जो समाज की बेहतरी में योगदान दे सकें।

प्रस्तावना

मदन मोहन मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन एक आदर्शवादी हिन्दुस्तानी का रहा है, जिसने राष्ट्र के उत्थान लिए अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। उन्होंने किसी व्यक्ति को कभी जाति और धर्म के तराजू पर नहीं तौला, बल्कि एक हिंदुस्तानी के रूप में देखा।

एक निर्धन परिवार में भले उनका जन्म हुआ हो, पर उन्होने देश का सबसे बड़े विश्व-विश्वविद्यालय की स्थापना का सपना देखा था जहाँ राजनीति, गणित, विज्ञान, रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र, प्रौद्योगिकी आदि विषयों की पढाई हो और जिसमें विश्व के हर कोने से लोग पढ़ने आये। मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा को राष्ट्र पहचान और गौरव की भावना पर आधारित होना चाहिए।

मालवीय जी के जन्म व शिक्षा

भारत के उत्तर प्रदेश राज्य का एक प्रमुख नगर प्रयागराज, जो पहले इलाहाबाद के नाम से भी जाना जाता था, महामना मालवीय जी की जन्म नगरी रही है। उनके पिता का नाम ब्रजनाथ और माता का नाम मुनादेवी था। ब्रजनाथ जी संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित थे। मालवीय जी का परिवार मध्य भारत के मालवा नगर से आकर इलाहाबाद में बसा था। इसी कारण उनका उपनाम मालवीय पड़ा था। ब्रजनाथ जी का परिवार जजमानी प्रथा का अनुसरण कर अपने परिवार का जीविकोपार्जन किया करता था, पर जजमानी प्रथा को अपनाने से मना कर दिया था तो प्रयाग आ कर संस्कृत भाषा में भागवत गीता का श्लोक सुनाकर परिवार का भरण पोषण करने लगे। महामना अपने माता पिता के चौथी संतान थे। गिरिधर मालवीय (2007) और कई अन्य लेखकों के कथनों से पता चलता है कि मदनमोहन मालवीय बचपन में संस्कृत सीखने के लिए हरदेव गुरु की पाठशाला में शामिल हुए और बाद में धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में शामिल हुए। बचपन से लेखनी के प्रति लगाव ने उन्हें लोगों के बीच पहुंचाया और उन्होने मरकन्द नाम से कविता लिखना शुरू कर दिया जो पत्रिकाओं में छपती थी और लोगों को बहुत पसंद भी आती थी। म्योर सेन्ट्रल कॉलेज से दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय से बैचलर ऑफ आर्ट्स की पढाई की। देश सेवा और धर्म की रक्षा का भाव

तो उनके अंदर बचपन से ही था पर दीनहीन की सेवा का भाव उन्हें अपनी माता मूनादेवी से मिला था।

अद्वितीय प्रतिभा, मर्मज्ञता और संस्कारों की मिसाल से मालवीय जी अपने समकालीन लगभग सभी नेताओं के चहेते थे। अपनी प्रखर वाणी, व्याख्यान और भाषण से लोगों के बीच छाये रहनेवाले महामना कर्मयोगी थे, वे जो बोले वह करके भी दिखाया था और इसी कारण भारत के दूसरे राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने मालवीय जी को 'कर्मयोगी' का दर्जा दिया था। महात्मा गांधी जी भी मालवीय जी से बहुत प्रभावित रहते थे और उन्होंने "महामना" की उपाधि से उन्हें सराहा था। इतना ही नहीं, उनकी देशभक्ति से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने उन्हें बड़े भाई और भारत निर्माता की संज्ञा दी थी।

कुशल व्यक्ति और समाजसुधारक महामना ने अपने सम्पूर्ण जीवन में कई ऐसे कार्य किये जो उन्हें सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों की श्रेणी में शामिल करते हैं, जैसे- गिरमिटिया मजदूरी का अंत, कलाराम मंदिर में हरिजनों का प्रवेश, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना आदि।

आदर्श पुरुष महामना सनातन धर्म के उपासक थे, जिन्होंने हिन्दू धर्म की संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए अथक प्रयास किए। "हिन्दू बोर्डिंग हाउस", "भाअखिल भारतीय सनातन महास", "ऋषिकुल", "हिन्दू प्रवधिनी सभा", "भागंगा सश्री" (हरिद्वार), ब्राह्मचर्याश्रम, भारत धर्म महामंडल" जैसे कई संस्थानों की स्थापना की और जीवनपर्यंत जुड़े रहे ताकि सनातन धर्म की रक्षा हो सके। गंगा पर बाँध बनाने के विरोध में उन्होंने गंगा महासभा की स्थापना की।

'सत्यमेव जयते' का उद्धोष करनेवाले महामना ने हरिद्वार के हर-की-पौड़ी घाट पर गंगा आरती की शुरुआत की थी जो आज भी की जाती है उसे देखने के लिए दर्शकों की भीड़ उमड़ती है।

शोध उद्देश्य:-

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य तत्कालीन भारत में मालवीय जी जैसे पत्रकार, समाजसुधारक और दूरदर्शी व्यक्ति से आज की युवा पीढ़ी को अवगत कराना था। इसके अलावा महामना जी का साहित्य और समाज-सुधार के प्रति झुकाव की भी व्याख्या करनी है।

शोध प्रविधि:-

प्रस्तुत शोधपत्र में विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों का संग्रह विभिन्न पुस्तकों, वेबसाइट, शोधपत्रों और साहित्यिक रचनाओं आदि द्वारा किया गया है। यह शोध पूरी तरह से विभिन्न द्वितीयक आँकड़ों और सामग्री का विश्लेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचा है।

महामना का पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान:-

पत्रकारिता के शिखर पुरुष के रूप में माने जानेवाले महामना पत्रकारिता का नायाब हीरा था, जिसकी चमक उनकी लेखनी के माध्यम से झलकती थी। पत्रकारिता के जगत में पाँव रखने से पहले मालवीय जी एक शिक्षक थे। उनकी पत्रकारिता की शुरुआत बहुत रोचक थी। महामना ने अपने पत्रकारिता की शुरुआत कालाकाँकर के देशभक्त राजा रामपाल सिंह के आग्रह पर "हिंदोस्थान" समाचार पत्र से की थी। यहीं से उनकी स्वतन्त्रता सैनानी के रूप में भी शुरुआत होती है। 1886 ईसवी में कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में आयोजित हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लेने पहुँचे रामपाल जी ने उन्हें समाचार पत्र में जाँइन करने का आग्रह किया था और इस आग्रह को स्वीकारते हुए महामना ने उनसे एक ही शर्त रखी थी कि आप कभी मुझसे शराब पीकर नहीं मिलेंगे और यह शर्त उन्होंने मान ली तथा मालवीय जी को अखबार के सम्पादन का कार्य सौंपा। महामना के प्रयास से पत्र ऊँचाइयों को छूने लगा। फिर एक दिन उनकी मुलाकात राजा रामपाल जी से उस वक्त हुई जब उन्होंने शराब पी थी, अंततः महामना ने अपनी नौकरी छोड़ दी। लगभग ढाई वर्ष की यात्रा 'हिंदोस्थान' के साथ करने के बाद अंग्रेज़ी 'साप्ताहिक'

पत्रिका "द इंडियन यूनिन" में मालवीय जी ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। काँग्रेसी नेता पंडित अयोध्यानाथ जी के साथ भी उन्होंने "इंडियन ओपिनियन" के सम्पादन कार्य में भी हाथ बटाया। साप्ताहिक पत्र "अभ्युदय" निकाल कर हिन्दी पत्रकारिता को बुलंदियों तक पहुंचाया, बहुत जल्द यह पत्रिका अपने समकालीन उत्तम पत्रिकाओं की सूची में शामिल हो गया। इतना ही नहीं 1909 में "पायोनियर" समाचार पत्र जिसे सरकार का समर्थन भी प्राप्त था, उसके समक्ष दैनिक अखबार "लीडर" निकाला। लोकमत निर्माण के लिए अगले ही वर्ष "मर्यादा" का सम्पादन कर आम जनता को जागरूक किया। "हिंदुस्तान टाइम्स" के निर्देशक मण्डल में शामिल होकर उन्होंने अखबार के प्रबंधन को सुव्यवस्थित और मजबूत किया।

अपनी पत्रकारिता के कैरियर के दौरान एक ऐसा भी मोड़ आया था जब 1889 ईसवी में महामना ने अपने संपादकीय कार्य को छोड़ इलाहाबाद आ गए, एल०एल०बी की पढ़ाई करने लगे और 1891 में पंडित मोती लाल नेहरू और सर सुन्दर लाल जैसे मशहूर वकीलों की श्रेणी में आ गए। महामना अपने सरल स्वभाव, उदारवादी चरित्र और मृदुभाषी होने के कारण लोगों द्वारा बहुत पसंद किए जाते थे।

शिक्षा जगत में महामना का योगदान :-

मालवीय जी जानते थे की शिक्षा वह शस्त्र है जो किसी भी तरह का बदलाव ल सकती है और शिक्षा पाने का अधिकार हर किसी को है चाहे वह किसी विशिष्ट जाती, समुदाय या धर्म से ही क्यों न हो। 1300 एकड़ से अधिक भूमि पर फैली हुई एशिया का सबसे बड़ा आवासीय विश्वविद्यालय, 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' है, जो महामना के स्वप्न का ही नतीजा है। इस संस्थान की गणना विश्व के उच्च स्तरीय संस्थानों में होती है और यहाँ विश्व के हर कोने से लोग शिक्षा लेने आते हैं। महामना को यह भूमि काशी नरेश ने दान में दी थी। शिक्षण संस्थान की स्थापना के लिए। इस विश्वविद्यालय के बारे में

कहा जाता है कि वे काशी आये और विश्वविद्यालय नहीं घूमे, विश्वविद्यालय के अंदर के शांत और खुशनुमा वातावरण का अनुभव नहीं किया उसने काशी घूमा ही नहीं। बी एच यू (बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के नाम से विख्यात इस विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, प्रबन्ध शास्त्र, कला, विज्ञान सहित कई विषयों और भाषाओं की भी पढ़ाई होती है। महामना ने जब काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना की तो वे देश और विदेशों से कई शिक्षकों को चुन-चुन कर अपने विश्वविद्यालय में लाये जिसमें डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी का भी नाम शुमार है।

मदन मोहन मालवीय जी एक भारतीय शिक्षाविद् और राजनीतिक नेता थे जिनका मानना था कि शिक्षा समाज के विकास और प्रगति की कुंजी है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्तियों के चरित्र और व्यक्तित्व को आकार देने के साथ-साथ ज़िम्मेदार नागरिक बनाने के साधन के रूप में भी देखा जो समाज की बेहतरी में योगदान दे सकें। आज भी महामना के विश्व विश्वविद्यालय में नियमित रूप से गीता ज्ञान का पाठ किया जाता है ताकि हर एक विद्यार्थी एक अच्छा इंसान भी बने। मालवीय का शैक्षिक दर्शन पारंपरिक भारतीय मूल्यों में गहराई से निहित था और छात्रों के समग्र विकास पर जोर देता था। शिक्षा के क्षेत्र में मालवीय जी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।

एक बार 1909 ईस वी में इंडियन नेशनल काँग्रेस के लाहोर सेशन के दौरान कहा था कि यह वह देश है जहाँ गरीबी और भुखमरी बहुत है, लोग प्लेग और मलेरिया जैसी बीमारियों से मर रहे हैं; पर दूसरी तरफ यह वह देश भी हैं जिसके पास प्रकृति सम्पदा की कमी नहीं है। लोग सरल जीवन जीते हैं, पर उनकी बौद्धिक क्षमता कहीं अधिक है। इस देश में कुछ उन्नत देशों की तरह अपराध भी नहीं है। यह उनका कहा वचन यह बयां करता है कि उन्हें भरोसा था कि इस देश के युवाओं को सही मार्गदर्शन मिले तो बहुत कुछ संभव है। मालवीय जी का दर्शन इतना परिपूर्ण और गतिशील था कि उच्च शिक्षा की समस्याओं का

हर समाधान था उनके पास। आज भी उनके द्वारा उच्च शिक्षा पर दिये गए हर व्याख्यान और भाषणों पर पूरा शोध किया जा सकता है।

मालवीय जी का मानना था कि एक राष्ट्र तब उन्नत राष्ट्र कहला सकता है जब वहाँ के निवासी सुशिक्षित हों। एक पढ़ा लिखा व्यक्ति ही अपने अधिकारों की बात सही मायने में समझ सकता है और कर सकता है। उन्होंने जीवनभर गाँवों और देहातों में शिक्षा के प्रचार- प्रसार के क अथ लिए प्रयास किए। राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाना है तो वह शिक्षा से ही संभव है। मालवीय जी का आर्थिक दर्शन राष्ट्रीय हित और आम लोगों की भलाई के आसपास केंद्रित था।

निष्कर्ष

महामना भविष्यदर्शी थे, जिनकी हर सोच पर राष्ट्र का कल्याण छुपा था। मालवीय जी का उद्देश्य उच्च शिक्षा को किसी भी हालत में जबाबदेह बनाना था तथा युवाओं को एक स्वस्थ और गतिशील राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान देने में सक्षम भी। मालवीय जी प्राचीन भारतीय संस्कृति और परंपरा में दृढ़ विश्वास रखते थे, पर उच्च शिक्षा के प्रति उनकी सोच सबसे आधुनिक थी। उन्होंने शिक्षा और पत्रकारिता को माध्यम बनाकर युवाओं को चरित्र निर्माण और देश के विकास के प्रति अपना योगदान देने के लिए प्रेरित किया। वे सम्पूर्ण जीवन में लोगों को अस्पृश्यता, अशिक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह आदि के प्रति जागरूक करते रहे। मालवीय जी एक निर्भीक पत्रकार के रूप में हर उन मुद्दों पर अपना पक्ष रखा जिससे राष्ट्र का कल्याण संभव था। मालवीय जी संक्रमित शिक्षा प्रणाली के बिलकुल खिलाफ थे। इसी कारण वे ऐसे विश्वविद्यालय का निर्माण करना चाहते थे जो नालंदा और तक्षशिला की तरह दुनिया भर से ज्ञान के प्यासे लोगों को आकर्षित करे, ना कि यू एस ए और लंदन के किसी विश्वविद्यालय की कॉपी बनकर रह जाए। मालवीय जी ने भारत में गरीबी का उपचार तकनीकी शिक्षा और स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा देने की भी वकालत की थी जो उनकी देशभक्ति और राष्ट्र भावना को दर्शाता है।

संदर्भ

- जोशी, एस.एस., महामना मालवीयजी जन्म शताब्दी खंड, अखिल भारतीय मालवीय शताब्दी समारोह समिति, बी एच यू, वाराणसी, 1961, पृष्ठ 105।
- मेनन, सी.एन., महामना के प्रेरक प्रसंग में, भाग 1 (हिंदी में), महामना मालवीय फाउंडेशन, वाराणसी, 2004 पृष्ठ 283
- द्विवेदी, बी.एन. विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर मालवीय का विज्ञान: उनकी 150 वीं जयंती मना रहा है। वर्तमान 1492 विज्ञान, 99 (11)।
- मिश्रा, ए.बी. हिंदू विश्वविद्यालय का उद्देश्य। महामना मालवीयजी जन्म शताब्दी खंड में, अखिल भारतीय मालवीय शताब्दी समारोह समिति, बी एच यू, वाराणसी, पृष्ठ 119
- महामना पंडित मदन मोहन मालवीय पर प्रेरक प्रसंग, भाग 1; जेडएम, पीजेडटी -1; 22.
- "निजाम VII द्वारा फरमान ने साबित कर दिया कि उन्होंने हिंदू शैक्षणिक संस्थानों को उदारता से दान दिया". द सियासत डेली - पुरालेख। 22 सितम्बर 2018.
- पांडे विश्वनाथ, 2006 "बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक; महामना पंडित मदन मोहन मालवीय; "वाराणसी प्रकाशन प्रकोष्ठ बी एच यू।
- 1 असिस्टेंट प्रोफेसर, आई.एम.एस गाज़ियाबाद युनिवर्सिटी कौर्सेस कैम्पस, आध्यात्मिक नगर, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201015
- 2 सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, रोनी हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश, पिन -791112
- असोसिएट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, DIHE-JIMS Noida, प्लॉट 20, सी, टेक जॉन 4, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश।



अनुवाद : मूल्यांकन के सिद्धान्त

◆ डॉ.षीना वी.के.

अनुवाद – सैद्धांतिक धरातल अनुवाद के विषय में सैद्धांतिक चर्चा की परंपरा बहुत ही पुरानी है। वस्तुतः अनुवाद की एक स्पष्ट सैद्धांतिक पृष्ठभूमि है। किसी भी विषय पर सैद्धांतिक चर्चा उस विषय की संपूर्ण प्रगति के लिए अनिवार्य तत्व है। सैद्धान्तिक चर्चा व सैद्धांतिक विश्लेषण के माध्यम से प्रायोगिक ज्ञान की वृद्धि भी होती है।

अनुवाद सिद्धान्त के अध्ययन – विश्लेषण की एक स्पष्ट पृष्ठभूमि है। सिद्धान्त विषय के ज्ञान के ज़रिए वास्तविक प्रक्रिया को एक स्पष्ट पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। स्पष्ट सैद्धांतिक धरातल के माध्यम से अनुवाद की प्रक्रिया और प्रविधि में व्यवस्था आ जाती है। अनुवाद विषयक विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से अनुवादक को अनूदित रचनाओं में आनेवाली त्रुटियाँ सुधारने में सुविधा होती है। अनुवादक को अनुवाद के प्रायोगिक पक्ष के साथ-साथ सिद्धान्त पक्ष का ज्ञान होना है। इससे अनुवाद की व्यावहारिक कठिनाइयों को परखने की सुविधा होती है।

अनुवादक को अनुवाद के सिद्धान्त पक्ष पर रुचि रखनी है। सामान्यतः अनुवादक को सिद्धान्त पक्ष का अध्ययन आवश्यक समझते हैं। अनुवादकों को अनुवाद सिद्धान्त के विभिन्न पक्षों पर पर्याप्त ज्ञान रखना है। अनुवादकों के लिए अनुवाद कार्य में दक्षता विकसित करने में अनुवाद सिद्धान्त का महत्व अटूट है।

अनुवाद के विषय में सैद्धांतिक चर्चा बहुत ही पुरानी है। अनुवाद चिंतन का अध्ययन-विश्लेषण ईसा पूर्व पहली शताब्दी में सिसरो के लेखन में मिलते हैं। अनुवाद के सैद्धांतिक पहलू की जानकारी के माध्यम से अनुवाद संबन्धी सभी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, इस तरह अनुवादक अनुवाद कला में दक्षता प्राप्त कर सकता है। अनुवाद सिद्धान्त की जानकारी अनुवादक, अनुवाद शिक्षक और अनुवाद समीक्षक के लिए ज़रूरी है।

अगर रचना को स्पष्ट सैद्धांतिक धरातल के माध्यम से परखे तो उसे एक स्पष्ट ढाँचा मिलती है।

अतः अनुवाद के सैद्धांतिक धरातल का ज्ञान अनुवादक को होना है।

यूरोपीय देशों में प्राचीन काल से ही अनुवाद के कुछ सामान्य सिद्धान्तों को कायम करने का प्रयास किया गया है। भारत में अनुवाद को मौलिक लेखन से अभिन्न माना गया है। अतः अनुवाद के सिद्धान्तों का विकास धीमी गति से चल रहा है। आधुनिक युग में अनुवाद के लिए कुछ सुनिश्चित सिद्धान्त की अनिवार्यता की ओर विद्वानों का ध्यान गया है।

अनुवाद सिद्धान्त की बहुमुखीयता

अनुवाद सिद्धान्त की कई विशेषतायें हैं। इनमें प्रमुख विशेषता इसकी बहुपक्षीयता है। इसका आधार विभिन्न शास्त्रों की समन्वित पृष्ठभूमि है। ये शास्त्र हैं – पाठ संकेत विज्ञान, संप्रेषण सिद्धान्त,, भाषा प्रयोग सिद्धान्त और तुलनात्मक अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान।

संप्रेषण सिद्धान्त और अनुवाद

अनुवाद का मूल उद्देश्य मूल रचना के भावों और विचारों का लक्ष्य भाषा में संप्रेषण ही है। संप्रेषणीयता के अन्तर्गत मूल रचना के अर्थ, भाव, शैली, संस्कृति आदि का संप्रेषण आता है। अनुवादक को मूल रचना की शैली पर अनूदित रचना की शैली का समुचित प्रयोग करना है। संप्रेषण का प्रमुख माध्यम भाषा है। अनुवाद कला में भाषा के अर्थपक्ष और शैली पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान है। यदि मूल रचना के अर्थपक्ष व शैलीपक्ष सशक्त हों तो संप्रेषणीयता में सशक्तता सहज रूप से होती है। संप्रेषणीयता के माध्यम से मूल रचना का उद्देश्य तथा संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

अनुवाद की प्रक्रिया ही सन्देश का संप्रेषण है। अतः अनुवाद में संप्रेषण सिद्धान्त की स्पष्ट भूमिका है। डा. सुरेश कुमार के शब्दों में “हम सन्देश का अनुवाद करते हैं, इसलिए अनुवाद की इकाई भी सन्देश है। अलग – अलग प्रकार के अनुवादों में सन्देश की अभिव्यंजक भाषिक इकाई का आकार भी अलग अलग रहते हैं।”--1

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक आई.ए.रिचर्डस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिनसिप्लिस ऑफ लिटरेरी क्रिटिज़िजम' में संप्रेषण तथा उसकी प्रक्रिया के बारे में लिखा है कि संप्रेषण अपने आप में एक जटिल कार्य है। उनके अनुसार – "तथ्यों तथा स्थूल विचारों का संप्रेषण करना तो सरल है, लेकिन भावों एवं अनुभूतियों से जुड़ी गहराई का पूरी तरह संप्रेषण करना कठिन होता है।"-2

रिचर्ड्स के अनुसार संप्रेषण के लिए रचनाकार तथा पाठक :आस्वादक की अनुभूतियों एवं अनुभवों में लगभग समानता होनी चाहिए, उसके अभाव में पूर्ण संप्रेषण असंभव है। उनका यह भी मानना है कि जब कोई कला अथवा कृति घटिया होती है या वह आस्वादक के चित्त पर वाँछित छाप छोड़ने में समर्थ नहीं होती तो इसका कारण यह हो कि संप्रेषण में कहीं कोई कमी रह गयी है।"-3

संप्रेषण सिद्धान्त की अनुवाद सिद्धांत पर महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

पाठ संकेत-विज्ञान और भाषा प्रयोग सिद्धांत

पाठ संकेत विज्ञान और भाषा प्रयोग सिद्धान्त अनुवाद के सिद्धांत पक्ष से सीधे संबन्धित है। अनुवाद संबन्धी चिंतन साहित्य कृतियों में ज़्यादातर हुआ है। भाषा प्रयोग पक्ष से निरवैयक्तिक लेखन संबन्धी अनुवाद के सैद्धांतिक सन्दर्भ भी आधुनिक युग में विकसित हुए हैं।

पाठ संकेत विज्ञान की सीमा भाषा विज्ञान की अपेक्षा व्यापक है तथा अनुवाद कार्य जैसे व्यापक संप्रेषण व्यापार के अध्ययन से उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक भाषा विज्ञान पर भी अनुवाद का गहरा संबन्ध है।

तुलनात्मक भाषा विज्ञान और अनुवाद

अनुवाद में तुलनात्मक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का काफ़ी महत्व है। अनुवाद करने के पूर्व अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की विशेषताओं की तुलना करके उसकी जाँच-परख करता है। यह चिंतन प्रक्रिया तुलनात्मक भाषा – विज्ञान पर आधारित है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन द्वारा

अनुवादक को अनुवाद की प्रक्रिया में काफ़ी मदद मिलता है।

अन्य प्रमुख सिद्धान्त

डा. एल.एन. शर्मा सौमित्र के अनुसार "किसी एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में अंतरित करना ही अनुवाद है,"-4 पर भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण से उसकी परिभाषा की है और सामान्यतः उन्हें तीन सिद्धान्तों के अंतर्गत रख सकते हैं। वे हैं:-

- क) अर्थ संप्रेषण का सिद्धांत
- ख) व्याख्या का सिद्धांत
- ग) समतुल्यता का सिद्धांत।

आगे प्रस्तुत सिद्धांत संबन्धी विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है।

अर्थ संप्रेषण का सिद्धांत

अनुवाद में मूलतः अर्थ पक्ष को वरीयता है। अर्थ तत्व के बिना किसी भी रचना की पूर्णता नहीं होती। उचित सार्थक शब्द चयन के माध्यम से अनुवाद कला में सुन्दरता आ जाती है। अर्थ संप्रेषण सिद्धांत के अनुसार किसी एक भाषा के अर्थ का दूसरी भाषा में अंतरण करने को अनुवाद की संज्ञा दी है। इन समर्थकों में प्रमुख है डा. जॉनसन, पीटर न्यूमार्क, एम.एच. स्मिथ आदि।

डा. जॉनसन के अनुसार अनुवाद का तात्पर्य है अर्थ को बनाये रखते हुए किसी अन्य भाषा में अन्तरण करना, अनुवाद मूल रचना के अर्थ पक्ष का ज्यों का त्यों अंतरण संतंभव नहीं है। मूल के अर्थ का कुछ न कुछ भाग प्रायः नष्ट हो जाता है।"5 पीटर न्यूमार्क के अनुसार "किसी अर्थ का विस्तार हो जाता है या कभी अर्थ का संकोचा"-6 अनुवाद के बारे में एम.एच.स्मिथ ने भी अपना विचार प्रकट किया है। उनके अनुसार- "अनुवाद का तात्पर्य यथासंभव अर्थ को बनाये रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण करना है।"7

व्याख्या का सिद्धान्त

व्याख्या के सिद्धांत के अनुसार अनुवाद

मूलतः व्याख्या या टीका-टिप्पणी है। नाईडा ने अनुवाद के बारे में कहा है कि “प्रत्येक अनुवाद में कुछ न कुछ व्याख्या होती है।”-8 रोजेटी के अनुसार अनुवाद शायद टिप्पणी का सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप है।-9 रोमनदैकबसन के अनुसार “अनुवाद एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों की अन्य भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा व्याख्या है।”-10 रूसी लेखिका ई.एम. मदिनिकोवा ने कहा है “अनुवाद तो एक तरह से टीका-टिप्पणी करता है।”-11

अनुवाद एक तरह से पुनर्रचना है और उसे व्याख्या कहना उतना ठीक नहीं, जितना उसे अर्थ, संप्रेषण की प्रक्रिया कहना। अनुवाद में मूल रचना के कथ्य का उचित शैली से पुनः सृजन करता है। अतः वह मूलतः व्याख्या नहीं है।

समतुल्यता का सिद्धांत

अनुवाद चिंतन के क्षेत्र में समतुल्यता का सिद्धांत बहुत ही प्रसिद्ध है। इसके समर्थकों में प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक जे.सी. केटफोर्ड तथा ई.ए. नाईडा के नाम उल्लेखनीय हैं।

केटफोर्ड के अनुसार “अनुवाद स्रोतभाषा की पाठ्य सामग्री का लक्ष्यभाषा की समतुल्य पाठ्य सामग्री द्वारा प्रतिस्थापन है।”-12

यूजीन ए. नाईडा के अनुसार “अनुवाद का तात्पर्य है स्रोत – भाषा के सन्देश के लिए लक्ष्यभाषा में निकटतम समतुल्यता की सृष्टि। यह समतुल्यता प्रथम तो अर्थ की होती है और द्वितीय शैली की।”-13

सांस्कृतिक सन्दर्भों के एकीकरण का सिद्धांत

अनुवाद में संस्कृति और संस्कृति के बीच मैत्री जोड़ने की प्रक्रिया चलती है। संस्कृति एवं सभ्यता का विकास अनुवाद द्वारा संपन्न होता है। अनुवाद द्वारा भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृति, आचार-विचार आदि की जानकारी मिलती है।

सांस्कृतिक तत्व का ज्ञान अनुवादक के लिए अनिवार्य है। अनुवाद एक प्रकार से सांस्कृतिक सेतुबन्धन का कार्य करता है। आजकल सांस्कृतिक

महत्व अनुवाद के साथ निकट से संबन्धित है।

डा.जी. गोपीनाथन के अनुसार “संस्कृति का तात्पर्य जनता के जीवन के तौर-तरीकों, परंपराओं और अन्य सामाजिक एवं भौगोलिक विशिष्टताओं से है। साहचर्य-सन्दर्भ जाने बिना अनुवाद करना कठिन होता है। प्रत्येक भाषा या रचना का अपना सांस्कृतिक परिवेश होता है। उसमें कई खासियतें होती हैं जो उस समाज के सांस्कृतिक- सामाजिक सन्दर्भों से संबन्धित होती हैं। अनुवाद के माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान का कार्य संपन्न होता है।”-14

पुनर्कोडीकरण का सिद्धांत

इस सिद्धांत के समर्थक तथा प्रवर्तक हैं विलियम फावले जो अमरीकी भाषा वैज्ञानिक तथा अनुवादक हैं। उनके अनुसार “--अनुवाद पुनर्कोडीकरण है, जिसमें दो कोड प्रयुक्त होते हैं, मेट्रिक्स कोड तथा लक्ष्य कोड। मेट्रिक्स कोड स्रोत भाषा है तथा लक्ष्य कोड से आशय लक्ष्यभाषा का पाठ है। पुनर्कोडीकरण में अनुवाद के लिए दो स्रोत होते हैं। उनसे उद्भूत होकर अनुवाद अपने आपको एक स्वतंत्र, किन्तु बंधकोड के रूप में स्थापित करता है।”-15

इस प्रकार अनुवाद के विभिन्न सिद्धांत हैं जो प्रायः अनुवाद के सैद्धांतिक पहलुओं के बारे में प्रकाश डालते हैं। ये सिद्धांत अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष पर प्रकाश डालने में सहायक हुए हैं। अनुवाद के सिद्धांत पक्ष के अन्तर्गत तुलनात्मक भाषाविज्ञान, पाठ संकेत विज्ञान, भाषाप्रयोग सिद्धांत, संप्रेषण सिद्धांत, व्याख्या सिद्धांत, अर्थसंप्रेषण का सिद्धांत, समतुल्यता का सिद्धांत, सांस्कृतिक सेतुबन्धन का सिद्धांत आदि मुख्य रूप से आते हैं।

अनुवाद सिद्धांत की प्रगति तथा विकास

डा.जी.गोपीनाथन के अनुसार “पश्चिम के अनुवाद विषयक सिद्धांतों एवं अध्ययनों के तीन चरण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। अनुवाद प्रारंभिक चिंतन बाईबल के अनुवादकों के आधार पर विकसित हुआ। पुनर्जागरण के बाद काव्य तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद की प्रक्रिया एवं सिद्धान्तों का युग है। बीसवीं शताब्दी में तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी

अध्ययन का विकास यंत्रानुवाद के प्रयोग तथा आदिवासियों की भाषा के अनुवाद के सिलसिले में भाषावैज्ञानिकों का ध्यान अनुवाद की ओर गया।"-

16

अनुवाद का क्षेत्र व्यापक है और बहुआयामी है। इस प्रकार अनुवाद सिद्धांत का भी महत्व बहुत है। आज अनुवाद संबन्धी प्रतिक्षण शोध हो रहा है। अनुवाद विषयक पत्रिकाएँ और पुस्तकें विभिन्न भाषा में प्रकाशित हो रही हैं। अनुवाद की प्रगति और विकास के लिए अनुसन्धान की प्रवृत्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है। अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष पर बल देते हुए विभिन्न संस्थाएँ कार्यरत हैं। विभिन्न विधा व क्षेत्र के भाषावैज्ञानिक, सूचना सिद्धांत विशेषज्ञ, नृतत्व विज्ञानी आदि अनुवाद के सैद्धांतिक पहलुओं पर शोध कार्य में मग्न हो रहे हैं।

अनुवाद के कई प्रकार हैं, जैसे- मानव अनुवाद, मशीनी अनुवाद, मौखिक अनुवाद, लिखित अनुवाद आदि। इनका क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रत्येक क्षेत्रों पर नयी-नयी संभावनाओं तथा दृष्टिकोण की नवीनता का प्रचलन हो गया है। इन सब बातों ने विशेषज्ञों व विद्वानों को प्रत्येक क्षेत्र में उत्सुकता से काम करने की प्रेरणा दी है और विभिन्न क्षेत्रों में बहुतेरे शोध हो रहे हैं। अनुवाद सिद्धांत की भूमिका का अब बहुत महत्व है।

अनुवाद सिद्धांत दार्शनिक तथा ज्ञानवर्धक है। प्रत्येक अनुवादक को अनुवाद के सिद्धांत पक्ष का पर्याप्त ज्ञान होना है। अनुवाद संबन्धी सामान्य प्रकृति की जानकारी ही अनुवाद सिद्धांत है और अनुवाद कार्य की प्रक्रिया में अनुवाद सिद्धांत का योगदान महत्व का है।

अनुवाद सिद्धांत के बारे में डा. सुरेशकुमार के दृष्टिकोण नवीनतम हैं। उनके अनुसार --- "अनुवाद सिद्धांत कोई अपने में स्वतंत्र स्वनिष्ठ सिद्धांत नहीं है। यह अनुवाद के विभिन्न मुद्दों से संबन्धित ज्ञानात्मक सूचनाओं का एक निकाय है, जिससे अनुवाद को एक प्रक्रिया अनुवाद कार्य एक निष्पत्ति अनूदित पाठ तथा एक संबन्ध सममूल्यता के रूप में समझने में सहायता मिलती है।"-17 अनुवाद सिद्धांत के लिए अन्य

प्रचलित शब्द हैं अनुवाद विद्या, अनुवाद विज्ञान, अनुवादकी आदि।

सुनिश्चित सैद्धांतिक अध्ययन के माध्यम से अनुवाद की एक सुनिश्चित सैद्धांतिक पृष्ठभूमि भी मिलती है।

संदर्भ

1. डॉ सुरेशकुमार- अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, पृष्ठ-20, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. एन एल शर्मा सौमित्र-अनुवाद चिंतन-पृ-13, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वही पृष्ठ-13
4. वही पृष्ठ -14
5. डॉ जी. गोपीनाथन-अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग, पृष्ठ -16, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पीटर नुयमार्क-The theory and practice of translation in language teaching linguistics Abstract- London Cambridge university press, 1976.
7. ए एच स्मिथ
8. डॉ.एल.एन.शर्मा सौमित्र-अनुवाद चिंतन, पृष्ठ-46, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. A translation is perhaps the direct form of commentary
10. George steiner -After baker london 1975, पृष्ठ 260
11. E M mednikova -Translation is an aspect of foriegn language studies, Moscow university press, 1976, पृष्ठ -57
12. जे सी कैटफोर्ड-A linguistics theory of translation पृष्ठ -20; Oxford university press, 1965
13. जी गोपीनाथ-अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग पृष्ठ. 16; लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. वही, पृष्ठ-17
15. लेख-William frawley, prokgomenonto a theory of translation Literary Linguistic and

philosophical perspective.

16. डॉ. जी गोपीनाथ- अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग पृष्ठ
-5, लोकभारती प्रकाशन

17. डॉ. सुरेशकुमार—अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा पृष्ठ
-30, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

संदर्भ ग्रंथ :-

- i. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, सुरेशकुमार .डॉ -
1986 ,नई दिल्ली ,वाणी प्रकाशन।

- ii. अनुवाद चिंतन – एल एन शर्मा सौमित्रविद्या ,
1990 ,नई दिल्ली ,काशन मंदिरप्रा।

- iii. अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग – जी गोपीनाथन ,
1985 ,इलाहाबाद ,लोकभारती प्रकाशन।

◆ सहाचार्य,

हिन्दी विभाग,

सरकारी ब्रेन्नेन कॉलेज,

तलशेरी-670106, कण्णूर जिला, केरल।

फोन:9744772422

नारी अस्मिता की तलाश 'उठो अहल्या' में

◆ डॉ.शबाना हबीब



शोध सार

नाटक एक ऐसी विधा है जिसमें अभिनय और रंगमंच नितांत आवश्यक है। नाटक विधा में आज-कल नए विषयों को नए प्रयोगों के माध्यम से रंगमंच में उभारने की कोशिश की जाती है। साहित्य की विविध विधाओं में नारी अस्मिता के बारे में ज़ोरों पर चर्चा- प्रतिचर्चाएँ होती रहती हैं। नाटक भी इससे अछूता नहीं रहता। सन् 2022 में प्रकाशित सुरेन्द्र दुबे का नाटक 'उठो अहल्या' नारी अस्मिता को नए सोच एवं नवीन चिंतन को प्रस्तुत करता है। नारी को अपने ऊपर होनेवाले शोषण के खिलाफ खुद आवाज़ उठानी चाहिए। अपने हक़ के लिए खुद लड़नी चाहिए। इसकी ओर पूरे नारी समाज को अवगत कराने के लिए मिथकीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत नाटक की रचना की गयी। सुरेन्द्र दुबे ने इस नाटक के माध्यम से पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की अवस्था कैसी है, उससे ऊपर उठने के लिए नारी को क्या करना चाहिए, इसके उपदेश और आह्वान दिए हैं।

बीज शब्द :

मिथक, पुराण, शिला, पतिता, कुलटा, धिक्कार,श्राप

मूल आलेख :

अन्य साहित्यिक विधाओं के समान नाटक साहित्य

भी समय-समय पर परिवर्तित होकर आगे बढ़ रहा है। चाहे कथा में हो या प्रयोग में हो नाटक साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। हिंदी में बहुत सारे नाटक समय-समय पर निकलते रहते हैं। इनमें मिथकीय नाटकों की संख्या भी कम नहीं है। "मिथक" शब्द यूनानी भाषा के मिथ शब्द से बना है और मिथ (Myth) शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'Muthos' से हुआ है, जिसका अभिप्राय है 'कोई भी मौखिक कथा'। कालान्तर में 'मुथोस' का प्रयोग किसी सामान्य कथा ये भिन्न अर्थ में किया जाने लगा, जिसका संबन्ध विशेष प्रकार की कथा से है। अपने विशिष्ट अर्थों में 'मिथ' का संबन्ध एक ऐसी कथा से है जिसके द्वारा सृष्टि या ब्रह्माण्ड संबन्धी कोई तथ्य अभिव्यक्त किया जाता है। अतः 'मिथक' अंग्रेज़ी के मिथ (Myth) शब्द के समानार्थी शब्द के रूप में हिंदी में भी प्रयुक्त होने लगा।

अहल्या की कथा आप सब जानते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर महाकाव्यों - पुराणों तक में इसके सूत्र मिलते हैं। बस कथा से संबन्धित तीन तथ्य प्रमुख हैं -1). इन्द्र द्वारा गौतम पत्नी अहल्या के साथ दुराचार 2). गौतम द्वारा इन्द्र और अहल्या को श्राप

देना 3).राम के चरण-स्पर्श से शिला बनी श्रापित अहल्या का उद्धार ।

इस कथा रूप को समकालीन परिप्रेक्ष्य में पिरोकर प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, सुरेंद्र दवे अपने 'उठो अहल्या' नाटक के माध्यम से ।

अहल्या बृहदशत और मेनका की पुत्री है। इसके जन्म लेते ही इसे ब्रह्म देव को सौंपकर अपने माता-पिता के दायित्व से उन्होंने मुक्ति पा ली । ब्रह्मदेव ने उसे गौतम ऋषि को सौंप दिया। अब वह कन्या बन गई। एक बार आश्रम में इंद्र आ गया। उसने गौतम से सहायता के लिए याचना की, क्योंकि वह राक्षसों से डरता था । अमरावती में इनके आक्रमण की योजना की सूचना देने को कहा । ऐसा प्रस्ताव रखा गया कि जब गौतम मुनि वन चलेंगे तब इंद्र ऋषि गौतम के वेष में आश्रम में सदा उपस्थित रहेंगे। इस समय इंद्र की दृष्टि अहल्या पर पड़ी। यह जानकार ब्रह्मा जी आकर गौतम से कहा कि - बहुत बड़ा संकट आ गया है। इंद्र अहल्या पर आसक्त हो गया है। इसलिए जल्दी से जल्दी अहल्या का विवाह गौतम से कराना चाहता है। विवाह संपन्न हुआ और उनके बच्चा भी पैदा हुआ ।

गौतम प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान के लिए गंगा के किनारे जाते थे । एक दिन वे गंगा स्नान करके लौट आए। लेकिन कुटीर का द्वार अंदर से बंध था। उन्हें आश्चर्य हुआ। वे दरवाज़ा खटखटाने लगे । अहल्या ने द्वार खोला । इंद्र गौतम का रूप धारण कर उनके पास पहले ही आए थे । अहल्या ने उन्हें गौतम मुनि समझकर उनके साथ कुछ पल बिताया था। पर- पुरुष को देखकर क्रुद्ध होकर गौतम मुनि ने उसे श्राप दे दिया और कलंकिनी घोषित की। यह सुनकर अहल्या बीच-बीच में कहती है कि मैं पापी नहीं हूँ। एक साथ दो गौतम को देखकर वह चकित हो गयी। आश्रमवासियों के सामने गौतम उसे पदभ्रष्ट कहते रहे । उस समय अहल्या भड़क उठकर कहती है - सुनो, आश्रमवासियो सुनो ! अपने पिता की आयु के पुरुष

के साथ ब्याह दी गयी, मैं चुप रही... जिस आयु में स्त्री पति की भुजाओं में आलिंगन का सुख पाती है मैं यज्ञ की समिधा एकत्र करती रही... चुप रही और आज... आज यह लांछन..?" 1.

पुराण के अनुसार अहल्या पर कलंक आरोपित करके गौतम उसे और इंद्र को श्राप देते हैं। अहल्या शिला बन जाती है। लेकिन इस नाटक में कथा को एक नया मोड़ मिलता है। गौतम मुनि उसे छोड़कर वन चले जाते हैं। आश्रमवासी भी कहीं चले जाते हैं। अहल्या एकदम अकेली हो जाती है। उसकी अवस्था कुछ इस प्रकार है - "हाँ, देखती नहीं अहल्या को। वह धीरे-धीरे पत्थर, बनती जा रही है। न कहीं आना न जाना। दिन - रात अपने कक्ष में बैठी पथराई आँखों से आकाश की ओर निहारती रहती है। यह अवसाद, विषाद और दुख का वह घनीभूत रूप है जो मनुष्य को धीरे-धीरे पत्थर बना देता है और वह जड़ (स्थिर, निष्क्रिय) हो जाता है"।¹² शिला बनने के पीछे का भाव निष्क्रिय बनना है। यहाँ नाटककार स्त्री नियति की ओर इशारा करता है। क्योंकि आज-कल ऐसे बहुत सारे समाचार आते रहते हैं जिनमें नारी को ही प्रश्नों के कटघरे में खड़ा किया जाता है । उसे सुननेवाला कोई भी नहीं है। अहल्या के शिला बनने के मिथक के माध्यम से वर्तमान समय की नारी की दशा पर विचार किया हुआ नज़र आते हैं ।

नाटक की कथा आगे बढ़ती है, तो देख सकते हैं कि गौतम के उजड़े आश्रम के कुछ दूर राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र खड़े रहते हैं । राम इस उजड़े आश्रम के बारे में विश्वामित्र से पूछता है। विश्वामित्र से ही वे सब जान लेते हैं। विश्वामित्र कहते हैं - "स्त्री जाति की यह नियति बनकर रह गई है राम । श्रीमंतों के विलास से पीड़ित स्त्रियाँ पतिता घोषित कर दी जाती हैं। तब समाज तो दूर उसके परिजन भी उसे स्वीकारने में संकोच करते हैं । वह जीते जी पत्थर बन जाती है ।"³ अहल्या की यही दिशा है। इससे यह व्यक्त होता है कि पुरुष

सत्तात्मक समाज में स्त्री का कोई स्थान नहीं है। पुरुषों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का शिकार स्त्रियाँ ही हैं। स्त्री की अवस्था अहल्या जैसी ही है। नारी पर कोई आपत्ति आ जाती है तो धर्म और समाज उसके खिलाफ हो जाते हैं। इसका दृष्टांत है यह नाटक। क्योंकि आश्रम के सभी लोग अहल्या को छोड़के चले जाते हैं। सभ्य समाज द्वारा नारी पर किए जानेवाले अत्याचारों पर राम की प्रतिक्रिया देखिए- "जहाँ स्त्री को देवी कहा जाता हो वहाँ उनकी यह दशा ? पाप कोई करे और दण्ड कोई भुगते ? युग - युगों से स्त्री जाति पर तरह-तरह के अंकुश लगाने के बाद भी पुरुष-दर्प तुष्ट नहीं हुआ। आज वह स्त्री के तन-मन पर अपने विलास की छुरी से असंख्य घाव करता जा रहा है और कहता है हम सभ्य हो रहे हैं... धिक्कार है हमें"।⁴ आज-कल ऐसा देखने को मिलता है कि सभ्य समाज में ही स्त्री अधिक पतित जीवन जीती है। हमारी संस्कृति स्त्री को देवी का दर्जा देती है। लेकिन आज ऐसी हालत स्त्री की हो जाती है, वह हमारी समझ के बाहर है। राम के वक्तव्य के माध्यम से वर्तमान समाज की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना नाटककार का उद्देश्य है।

आश्रम के मुनिवर जो हैं, वे जानते हैं कि अहल्या का कोई दोष नहीं है। फिर भी उनमें इतना साहस नहीं है कि सत्य के पक्ष में खड़े रहें। ऋषिगण जो हैं साधारण मनुष्य नहीं, समाज में ऊँचे ओहदे प्राप्त लोग हैं। फिर भी वे सब अहल्या के खिलाफ हो गये। वर्षों बाद विश्वामित्र को अपनी गलती का एहसास हो गया और अहल्या से अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहते हैं- तुम कुलटा नहीं, पातकी नहीं। पातकी तो हम ऋषि हैं, यह समाज है, जिसने तुम्हें पत्थर बनाकर छोड़ा है।⁵

राम अहल्या को अपनी माँ समझकर उसका उद्धार करना चाहता है और बताता है कि... "माँ हमें आशीर्वाद दें कि आपके अपराधी को दण्ड

दे सकें"।⁶ यह वचन सुनकर अहल्या के मन को आश्वासन मिलता है और बताती है कि - अब तक तो इसी आशा में जी रही थी कि कोई तो आएगा जो उस नीच देवेंद्र को उसके कर्मों का दण्ड देगा...."।⁷ अक्सर ऐसा होता है कि नारी अपनी नियति पर अपने आप को कोसती रहती है और इसी आशा में जीती है कि कोई न कोई आएगा अपने उद्धार के लिए। यहाँ इस नाटक के माध्यम से सुरेंद्र दुबे ने राम के माध्यम से जो कहना चाहता है वह सचमुच प्रासंगिक है-" नहीं, माँ ! नहीं... क्यों करती है प्रतीक्षा किसी पुरुष की? उठें, जागें और अपनी मुक्ति खुद ढूँढ़ें ... नहीं आएगा कोई राम तुम्हें बचाने माँ !... नहीं आएगा। आखिर राम भी तो पुरुष ही है..."।⁸

अक्सर ऐसा कहा जाता है कि नारी के भाग्य की रेखाएँ कुटिल लिपि से लिख दी गयी हैं। इसलिए उसे बहुत कुछ सहना पड़ता है। अहल्या भी ऐसा विलाप करती तो राम कहता है -" उठो। बदल दो भाग्य की रेखाओं को.... जब भी कोई स्त्री निर्भय होकर उठ खड़ी होगी - चुनौती देती हुई समाज को पुरुष समाज को, इस समय उसकी भाग्य की रेखाएँ खुद-ब-खुद बदल जाएँगी। कोई नहीं बदलेगा, गौतम नहीं बदलेगा और राम भी..."।⁹ इससे यह व्यक्त होता है कि नारी की नियति वह खुद लिखती है। उसे अपनी शक्ति खुद पहचाननी चाहिए। जब तक वह अपने बूते पर नहीं खड़ी हो जाती है तब तक उसका उद्धार नहीं हो जाएगा। इसी तथ्य की ओर नाटककार इशारा करता है।

अक्सर समाज में यह देखने को मिलता है कि कोई भी पुरुष सत्ता के बल पर, धन के बल पर नारी पर अत्याचार करता है। वह दूसरों को डराने में भी सफल होता है। उससे डरकर समाज अत्याचारी के खिलाफ एक लब्बस तक नहीं कहता। इस नग्न यथार्थ की अभिव्यक्ति है यह नाटक। इसमें इंद्र सत्ता और धन के बल पर ही अहल्या पर

अत्याचार करता है। समाज उससे डरकर अहल्या को पापी घोषित करता है। लक्ष्मण के मुँह से नाटककार यह कहलाना चाहता है कि -" मुझे तो इन पर शर्म आती है। कोई पुरुष अपने सत्ताबल, धनबल या बाहुबल में मत्त स्त्री के साथ दुराचार करता है और हम डरकर चुप रहते हैं। बड़ा खतरनाक है यह चुप्पी.....समाज की चुप्पी। कहीं यह चुप्पी जीवन का विलोम तो नहीं?" 10। इसके प्रत्युत्तर में राम कहता है - "समाज की इस चुप्पी को तोड़ने की शक्ति नारियों पर है। और आगे कहता है कि -" उठो! अपने भीतर ही प्रकाश का संधान करो माँ, अपने भीतर ही फूट पड़ेंगे अज्ञान स्रोत शक्ति के। नहीं है बाहर कोई तुम्हारा रक्षक! तुम स्वयं रक्षक हो। आदि शक्ति हो तुम। उठने !." 11 इससे यह तथ्य उभरकर आता है कि अपने ऊपर किए जानेवाले अत्याचार के खिलाफ अपने आप खुद लड़ना चाहिए। अत्याचारी को दण्ड खुद देना है। इस के लिए अपने अन्दर की शक्ति को पहचानने का आह्वान देता है।

नाटक के अंत में अहल्या अपनी शक्ति पहचानकर कहती है- "मैं अहल्या. मेनका पुत्री अहल्या पापी को दण्ड दूँगी, इन्द्र को दण्ड दूँगी।" इसके बाद नाटक की और भी दो स्त्रियाँ एक साथ कहती हैं - "कोटि- कोटि स्त्रियों के भीतर की अहल्या उठो। इन्द्र को दण्ड दो... पापी को दण्ड दो...!" 12 इन वाक्यों के माध्यम से यह बात पूरी नारी जाति को समझाने का प्रयत्न है कि नारी को अपनी शक्ति को पहचानकर आगे बढ़ना चाहिए। उन्हें अपनी रक्षा खुद करनी है, न कि किसी दूसरे के बल बूते जीना है।

यहाँ नाटककार ने अहल्या को दुखित - दमित-पीड़ित असंख्य नारियों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। पापी को दण्ड देने का अधिकार

और किसी को नहीं, खुद नारी को ही है। पुराण के अनुसार गौतम मुनि के श्राप से शिला बननेवाली अहल्या राम के स्पर्श से श्रापमुक्त हो गयी थी। लेकिन इस नाटक में राम उन्हें न केवल मुक्ति देने आया है, बल्कि उनमें आत्मविश्वास दिलाने का प्रयास करता है कि अत्याचारी को दण्ड देने की शक्ति खुद में है। राम खुद को पहचानने की सलाह देनेवाला उत्तराधुनिक सोच रखनेवाले युवक का प्रतीक है। अपनी शक्ति को पहचानकर समाज से लड़कर आगे बढ़ने की सलाह देता है और यह चेतावनी भी देता है कि जब तक नारी अपने अंदर की शक्ति, खुद की शक्ति न पहचान लेगी, अपने ऊपर किए जानेवाले अत्याचार के खिलाफ नहीं लड़ेगी तब तक उसका उद्धार संभव नहीं होगा।

संदर्भ

1. उठो अहल्या- सुरेंद्र दूबे – वाणी प्रकाशन- 2018 पृष्ठ सं-57, 58
2. वही पृष्ठ सं- 60
3. वही पृष्ठ सं- 63
4. वही पृष्ठ सं- 64
5. वही पृष्ठ सं- 66
6. वही पृष्ठ सं- 66
7. वही पृष्ठ सं- 66
8. वही पृष्ठ सं- 66
9. वही पृष्ठ सं- 67
10. वही पृष्ठ सं- 69
11. वही पृष्ठ सं- 69
12. वही पृष्ठ सं- 72

◆ सहायक आचार्या

राजकीय महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम, केरल।



विकल्प का सौन्दर्यबोध पैदा करती है 'जंगली कुलपति की कथा'

◆डॉ. प्रवीण कुमार

आज से 5-6 दशक पूर्व हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आत्मकथा' विधा ने साहित्य के प्रतिमान को पुनः परिभाषित करने पर साहित्य के विद्वानों को मजबूर किया। तब से लेकर अब तक 'आत्मकथा' का इतिहास देखें तो ऐसी कई आत्मकथाएँ हैं जिन्होंने न केवल साहित्य, बल्कि समाज की व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप किया है और व्यक्ति और समाज सहित राष्ट्र की समस्याओं को समझने में मदद की है। ऐसी ही एक आत्मकथा है प्रो. टी वी कट्टीमनी की, जोकि 'जंगली कुलपति की कथा' शीर्षक से सर्वप्रथम कन्नड़ भाषा में प्रकाशित हुई; तत्पश्चात् अंग्रेज़ी, तमिल, तेलुगु, मराठी, उड़िया और पंजाबी में। असमिया, बंगाली आदि भाषाओं में अनुवाद सहित हिंदी भाषा में 'शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली' से प्रकाशित हुई है। यह आत्मकथा धरती आबा भगवान बिरसा मुंडा को समर्पित है। आत्मकथा की बुनावट-बनावट में बिरसा मुंडा के सामाजिक परिवर्तन की अनुगूँज सुनाई पड़ती है। यह इस आत्मकथा की शक्ति है। यह आत्मकथा समाज सहित भारतीय सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन की माँग करती है। इसकी सीमा यह है कि यह पुस्तक 'सिर्फ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय' में बतौर कुलपति लेखक के कार्यों का लेखा-जोखा है। यँ कह सकते हैं कि यह कुलपति कार्य की ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। "यह एक कोमल पौधे के विशाल वृक्ष में बदल जाने की कहानी भी है।"¹

'जंगली कुलपति की कथा' प्रतिरोध की संस्कृति और सकारात्मक परिवर्तन की प्रतिबद्धता से उपजा हुआ लग रहा है। वैसे ही जैसे 'जूठन खा रहा था तो बहुत अच्छा था और लिख दिया तो बवाल मच गया'। कुलपति बन से पूर्व की कथा टी वी कट्टीमनी से प्रो टी वी कट्टीमनी की है जोकि आदिवासी मानुष की अकादमिक यात्रा एवं जीवन

संघर्ष की कहानी है जब वे कुलपति बने हैं तो "जंगली" कुलपति हो जाते हैं। यह कैसे संभव हो सकता है? शिक्षा प्राप्त करने के बाद तो आदमी 'इनसान' बनता है, फिर प्रो. कट्टीमनी जी के स्वभाव, विचार, व्यवहार आदि तो जंगली नहीं हैं जैसा कि मैंने अकादमिक सहकर्मियों के तौर पर काम करते हुए पाया, समझा। मेरे जैसा अनुभव उनके साथ काम करनेवाले और देश-दुनिया में उनके विचारों से परिचित लोग भी बता सकते हैं। इसलिए मुझे आत्मकथा का शीर्षक बार-बार ठहर कर सोचने पर मजबूर करता है। हालाँकि लेखक महोदय ने स्वयं शीर्षक के बारे में लिखा है- "जब इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय में कुलपति के रूप में पदभार ग्रहण किया तो पूर्व से नियुक्त कुछ लोगों को एक आदिवासी का कुलपति बन जाना बहुत अखरा, मुझे पीठ-पीछे जंगली, गंवार और भी न जाने क्या-क्या कहा गया।"² लेखक ने आत्मकथा में कुलपति प्रो. टी वी कट्टीमनी के लिए लोगों द्वारा प्रयुक्त संबोधन "काला", "कालू" और "जंगली" आदि शब्दों का जिक्र किया है। अब तक ये बातें लिखित और मौखिक ही थीं, लेखक ने लिख दिया है तो प्रतिक्रिया होना स्वभाविक ही है। सो हुई भी और होनी भी चाहिए। आत्मकथा प्रकाशित होने के बाद लोक में आत्मकथा की चर्चा के साथ-साथ यह सूक्त वाक्य प्रचलित हुआ- "जंगली विश्वविद्यालय के जंगली कुलपति की कथा"। लोक में प्रचलित यह वाक्य विश्वविद्यालय और उसके कुलपति के प्रति नकारात्मक मानसिकता की उपज लगती है। यहाँ दो बातों पर ध्यान देने की ज़रूरत है। एक कुलपति जंगली नहीं हो सकता और न विश्वविद्यालय जंगली हो सकता है। न ही जंगली व्यक्ति कुलपति बन सकता है। फिर शीर्षक जंगली क्यों? दूसरी बात "लोक" के सन्दर्भ में है। वह "लोक" हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का "लोक" नहीं है बल्कि रामचंद्र शुक्ल का "लोक" है। जब एक खास वर्ग विशेष के लोगों के द्वारा प्रो. टी वी कट्टीमनी जी को कुलपति या आदिवासी कुलपति या जनजातीय

कुलपति 'जोकि संवैधानिक व सम्मानित संबोधन है', की जगह "जंगली कुलपति" के संबोधन से संबोधित किया जा रहा होगा और उनके दिल-ए-जिस्म को लहू लुहान किया जा रहा होगा। उनके अकादमिक कार्यों को बाधित भी किया जा रहा होगा, जैसा कि उन्होंने आत्मकथा में जिक्र किया है। लगता है वही अनुभूति आत्मकथा के शीर्षक में तब्दील हो गयी है। विश्वविद्यालय के आस-पास नज़र दौड़ाने से यह मालूम होता है कि यहाँ के आदिवासियों के प्रति खास वर्ग और विचारधारा के लोगों की मानसिकता और प्रवृत्ति में आदिवासी का संबोधन नहीं है बल्कि वे उन्हें "वनवासी" या "जंगली" ही कहते हैं जोकि अपने आप में हिकारत भरा शब्द है। सम्मानरहित और असंवैधानिक शब्दों के प्रयोग से हमेशा बचना चाहिए। वैसे ही वंदना टेटे के अनुसार 'आदिवासी भाषाओं में नकारात्मक और अवमूल्यन करनेवाले शब्दों की मौजूदगी नहीं है।³ वैसे मध्यप्रदेश में तो 'आदिवासी कल्याण आश्रम' शब्द की जगह 'वनवासी कल्याण आश्रम' प्रयोग किया गया है। "जंगली कुलपति" शीर्षक को समझने के लिए यह भी एक सन्दर्भ ले सकते हैं। 'जंगली' का अर्थ तो जंगल में रहनेवाला, जंगल में उपजने वाला, जो अपने-आप उग आता हो, असभ्य एवं असंस्कृत होता है। 'वनवासी' का मतलब ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोश के अनुसार जंगल में रहनेवाला है। जंगल में तो जानवर रहता है तो क्या आदिवासी जोकि इस देश-दुनिया का मूलनिवासी है मनुष्य नहीं, जानवर है? सो उन्हें जंगली संबोधित किया जाता है और उन्हें मानवेतर या कमतर होने का अहसास कराया जाता है? यह-कौन सी मानसिकता है। इसकी शिनाख्त तो होनी ही थी। सो हुई वाया 'जंगली कुलपति की कथा'। आखिर आदिवासी समाज के 'कुलगुरु' जो हैं विश्वविद्यालय में लोग उन्हें 'कुलगुरु भी कहते हैं। इस सन्दर्भ में मुझे महादेव टोप्पो और वाहरु सोनवणे की कविता याद आ रही है, जिसमें महादेव टोप्पो जी लिखते हैं -'इस देश में पैदा होने का /मतलब क्या है जानते हो मेरे भाई?/नहीं? इस देश में पैदा होने का/ मतलब है आदमी का जातियों में बंट जाना/ और गलती से अगर

तुम हो गये पैदा/ जंगल में तो तुम कहलाओगे/ आदिवासी -जंगली-वनवासी-गिरिजन वगैरह-वगैरह/आदमी तो कम-से-कम कहलाओगे नहीं ही।⁴ वैसे ही अभियक्ति है सोनवणे जी की 'स्टेज' कविता की-' बिना स्टेज पर गये ही मुझे इशारे से बैठा दिया गया और मेरी हैसियत बता दी गयी।⁵ यह है तथाकथित सभ्य कहलाने वाले समाज की, आदिवासी समाज के प्रति सोच। कब तक यह रहेगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसका प्रति उत्तर यह आत्मकथा देती है। इसीलिये यह कहना अनुचित नहीं है कि यह प्रतिरोध की संस्कृति से उपजा शीर्षक है। यहाँ एक और सन्दर्भ का संज्ञान लिया जा सकता है। कार्ल मार्क्स ने चोरी को मानवीय सभ्यता के खिलाफ़ विद्रोह कहा है। ऐसा प्रतीत होता है प्रो. टी वी कट्टीमनी ने 'जंगली कुलपति की कथा' लिखकर आदिवासी समाज को इनसान न समझनेवाली सोच, विचार, विचारधारा, प्रवृत्ति, व्यवस्था और मानसिकता के खिलाफ़ न केवल प्रतिरोध दर्ज किया है बल्कि उस सामाजिक यथार्थ के चरित्र को भी चित्रित किया है। साथ ही इस आत्मकथा में यह विज्ञान भी देखने को मिलता है कि कैसे आदिवासी समाज के व्यक्ति अभाव, वंचना, विकल्पहीनता और तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति, समाज, संस्था और राष्ट्र को विकसित करने में अपना योगदान दे सकते हैं।

आत्मकथा को समझने के लिए आत्मकथा की अवधारणा के कुछ बिन्दुओं को रेखांकित किया जा सकता है; जो इस प्रकार है, विशेष अध्ययन के लिए 'हिंदी दलित आत्मकथाएँ: स्वानुभूति एवं सर्जना का परिप्रेक्ष्य' पुस्तक को पढ़ा जा सकता है। "आत्मकथा आत्म की अनुभूति से शुरू होती है और आत्मसंघर्ष की अंतिम परिणति के तौर पर वह सर्जना का स्वरूप धारण करती है। अनुभूति और सर्जना की परम्परा मानवीय सभ्यता-संस्कृति के साथ आकार लेती है और उसका सरोकार भी मानव जीवन के जटिल संबंधों एवं उसके ताने-बाने के बीच ही बनता है तथा क्रमिक विकासक्रम में ही उसका विकास होता है।"⁶ यह हमेशा ध्यान रखने की ज़रूरत है। १) आत्मकथा

स्वानुभूति की रचनात्मक दस्तावेज़ है। २) वह आत्मपरीक्षण, आत्मालोचन और आत्मान्वेषण की कथा है। ३) सामाजिक संबंधों की परख-पड़ताल है। ४) तथ्यनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और सामाजिक यथार्थ का ताना-बाना है। ५) आत्मचेतना और वैज्ञानिक चेतना की उपज है। ६) स्व से समाज और राष्ट्र-निर्माण की यात्रा भी है। ७) इतिहास निर्मिति का आधार है। ८) जीवन-संघर्ष के विविध सौन्दर्य के विभिन्न पहलुओं को समझने का माध्यम है। ९) प्रतिरोध की संस्कृति के सौन्दर्यबोध को जानने का उपकरण है। १०) अमानवीयता के शास्त्र के बरक्स मानवीयता के सौन्दर्यबोध को भी उजागर और स्थापित करती है। आत्मकथाएँ खासकर दलित, आदिवासी और स्त्री आत्मकथाएँ इत्यादि। इस आलोक में प्रो. टी वी कट्टीमनी की आत्मकथा 'जंगली कुलपति की कथा' पढ़ने और समझने की ज़रूरत है। इस क्रम में भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, ब्राह्मणवाद, क्षेत्रवाद, वर्चस्व की आक्रान्त संस्कृति और खामोशी की संस्कृति-दोनों की सोच, वंचना-आभाव के बीच जीवन सौन्दर्य की कहानी, विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय में व्याप्त असमानता, विषमता, जातिवाद-धर्मवाद, क्षेत्रवाद आदि के पहलुओं को भी समझा जा सकता है, जिसकी खबर वक्त-बेवक्त समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम आदि से लेकर प्रो टी वी कट्टीमनी तक की आत्मकथा में भातीय शिक्षण संस्थानों में दलित, आदिवासी, स्त्री, पिछड़ा वर्ग आदि समाज से आनेवाले शिक्षकों, शिक्षार्थियों और कर्मचारियों के यथार्थ को समझा जा सकता है। उनकी स्थिति-प्रस्थिति के कारकों की भी परख की जा सकती है। भारतीय शिक्षातंत्र की खामियों और उसके कमज़ोर पक्षों को महसूस किया जा सकता है और उसे दूर भी किया जा सकता है।

आत्मकथा बताती है कि कुलगुरु प्रो. टी वी कट्टीमनी ने विश्वविद्यालय को अमरकंटक की वादियों से वैश्विक वादियों में खुशबू बिखेरने हेतु एड्डी-चोटी का प्रयास किया है। इसके वातावरण को राष्ट्रीयता की चेतना से लबरेज करने का पूरा प्रयास किया।

उनके कार्यों में भारतीयता की खुशबू है। अपनी धरती अपनी माटी की सौंधी महक है और अपने इस कार्य में वे बहुत हद तक सफल भी रहे। इसके लिए उन्होंने न केवल भारत के लगभग सभी राज्यों से, सभी वर्ग-समुदाय से शिक्षकों-कर्मचारियों की नियुक्ति ही नहीं की, बल्कि यहाँ सभी राज्यों के विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु पूरी यथासंभव सुविधाएँ भी उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया। यह आत्मकथा विकल्प का सौन्दर्यबोध पैदा करती है कि आप अपने ज्ञान और कौशल से विषम और विपरीत परिस्थिति में भी बेहतर विकल्प की तलाश कर सकते हैं। इतिहास रच सकते हैं। भारतीय आत्मकथाएँ भारतीय समाज का आईना है जिसमें आप अपना और अपने समाज का चेहरा देख सकते हैं और चित्तवृत्ति के प्रतिबिम्ब को भी समझ सकते हैं। महादेव टोप्पो की कविता के माध्यम से इस ग्रन्थ- 'जंगली कुलपति की कथा' के ऐतिहासिक महत्त्व को समझा जा सकता है-

"उन्हें नहीं है स्वीकार

इसलिए तुम इतिहास के ग्रंथों में

हाशिये पर डाल दिये गये हो

या कर दिये गये हो उससे बाहर

इससे पहले कि वे पुनः तुम्हारा

अपने ग्रंथों में बन्दर, भालू या अन्य किसी जानवर

के रूप में करें वर्णन

तुम्हें अपने आदमी होने की

खोजनी होगी परिभाषा

उनके सिद्धांतों, स्थापनाओं, मन्तव्यों के विरुद्ध

उनके बर्बर वैचारिक हमलों के विरुद्ध

रचने होंगे

स्वयं ग्रंथ।"7

इस ग्रंथ से प्रो. टी वी कट्टीमनी की समाज, विश्वविद्यालय और राष्ट्र के विकास के प्रति प्रतिबद्धता को महसूस किया जा सकता है। भारत के विकास के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, समर्पण और योगदान को समझा जा सकता है। वे प्रकृति से सीखते हैं और प्रकृतिमय जीवन के प्रति मनसा, वाचा और कर्मणा समर्पित दिखते हैं। सिर्फ भाषण नहीं देते हैं, बल्कि अपने इंजीनियरिंग से उसे साकार करके

दिखाते भी हैं। वे बाबा साहेब से प्रेरित और प्रभावित हैं। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय में विश्वास करते हैं। यह उनके रचनात्मक कार्यों में झलकता है। यह पुस्तक सिर्फ एक इतिहास ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह भूगोलविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, औषधिविज्ञान, समाजविज्ञान, विकास के समाजशास्त्र के साथ-साथ मानवशास्त्र की भी पुस्तक है। मानव जीवन की मूलभूत समस्याओं से लेकर राष्ट्रीय समस्याओं के चिंतन और उसके सकारात्मक अनुप्रयोग के व्यावहारिक पक्षों पर कार्य करते हुए लोकल से ग्लोबल होने की चाहत रखना इस पुस्तक की खासियत है। अमरकंटक के भूगोल और बायोस्फियर का अद्भुत शास्त्र और ज्ञान इसमें उपलब्ध है जो विश्वविद्यालय के स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय चिंता एवं चिंतन को अपनी ओर आकर्षित करता है। जड़ी-बूटियों से भरापूरा अमरकंटक की दुनिया में 'सिकल सेल एनीमिया'⁸ की चिंता और निवारण पर चिंतन की दुनिया को भी यह पुस्तक बयां करती है। औषधीय पौधों, वृक्षों आदि का खजाना है, उसका शब्दकोश है यह पुस्तक। उसका 'बायोस्फियर'⁹ है इसमें। औषधियों के नाम और कौन किस बीमारी के उपचार हेतु काम आता है इसका विवरण भी है इसमें। इस चिंता और चिंतन में प्रो. कट्टीमनी ने देशज ज्ञान-विज्ञान से लेकर शास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान का अद्भुत समन्वय किया है। देशज ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान दोनों के साथ भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विकास की दूर-दृष्टि को यह आत्मकथा व्यवहारिक तौर पर समझने-समझाने की बात करती है ताकि भारत का सचमुच विकास किया जा सके। प्रो. कट्टीमनी ने सही ही लिखा है कि "अकैडमिया और इंडस्ट्रियों के मधुर सम्बन्ध से विश्वविद्यालय के चेहरा को बदला जा सकता है"¹⁰। ऐसी ही दृष्टियों से लेखक ने विश्वविद्यालय के साथ-साथ स्थानीय समाज के विकास हेतु किये गये प्रयत्न का विवरण इस पुस्तक में दिया है। समस्याओं को जटिल नहीं बल्कि सरल बनाने की उनकी पद्धति रही है। यह पुस्तक यह सन्देश देती है कि कोई भी रचनात्मक कार्य हेतु प्रेरणा अंतर्मन से होनी चाहिए, न कि आदेश से। इसमें

स्वच्छता क्यों और कैसे, आदिवासी लोककला, पेंटिंग और संस्कृति को संरक्षित करने और उसका राष्ट्रीयकरण क्यों एवं कैसे किया जाये, इस पर भी विचार किया गया है। विश्वविद्यालय को कैसे और किस प्रकार से आदिवासी समाज, संस्कृति, उनकी समस्याओं तथा विकास की चुनौतियों पर चिंतन, मनन और अनुसंधान की ज़रूरत है- यह विश्वविद्यालय का विज्ञान है। आदिवासियत¹¹ के आलोक में यह पुस्तक इस पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डालती है। किसी भी संस्थान के विकास हेतु शिक्षण-अधिगम, अनुसंधान, रचनात्मक कार्य के प्रकाशन, व्यावसायिक कार्य, भौतिक संसाधन की उपलब्धता, मानव संसाधन, छात्रावास, आवास, शारीरिक तन्दुरुस्तता हेतु खेलकूद की सामग्री-उपकरण-संसाधन, आधुनिक तकनीक की उपलब्धता और उसका शिक्षण-प्रशिक्षण आदि के साथ एक कुशल नेतृत्व की ज़रूरत होती है। यह अनिवार्य संसाधन है। इसकी प्राथमिकता पर प्रकाश डालती है यह पुस्तक। यह पुस्तक हमें यह भी सिखाती है कि कैसे असंवैधानिक और विकास विरोधी सोच के बरक्स संवैधानिक विकास को नया स्वरूप दिया जा सकता है। एक कुशल नेतृत्वकर्ता वैज्ञानिक की तरह प्रो. कट्टीमनी ने भारतीय शिक्षा के ह्रास के कारणों और विकास की संभावनाओं दोनों पर गहरी दृष्टि से विचार करते हुए इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय के अकादमिक वातावरण को नया स्वरूप प्रदान किया है। उसका कायापलट किया है। स्थानीयकरण, क्षेत्रीयकरण, परिवारवाद से मुक्त राष्ट्रीयकरण-अंतर्राष्ट्रीयकरण हेतु सकारात्मक प्रयास किया है और सफलता अर्जित किया है। यह भारत के एक श्रेष्ठ एवं सफल कुलपति की कथा है। यह आदिवासी विश्वविद्यालय के बनने-बनाने, समझने-समझाने की कथा है। यह बोध-शोध, अनुसंधान-अन्वेषण, सृजन-सर्जन, संवर्धन-संरक्षण, अंकुरित-विकसित, पल्लवित-पुष्पित और फलित होने की कथा है।

आदिवासियत से लबरेज इस रचना में भारत में आदिवासी समाज के विकास की संरचना,

विज्ञान और उपकरण आदि सब कुछ है। यूँ कह सकते हैं कि यह किताब विकास का समाजशास्त्र है जिसके दर्शन और नेतृत्वकर्ता दोनों ही आदिवासी हैं, कोई गैर आदिवासी नहीं। यह पुस्तक समाज और शिक्षा व्यवस्था-पद्धति दोनों में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की माँग करती है। सिर्फ माँग ही नहीं करती है, बल्कि उसका क्रियात्मक स्वरूप कैसा हो, इसका भी इंजीनियरिंग करती है। इस दृष्टि से यह पुस्तक भारत की शिक्षा-व्यवस्था कैसी होनी चाहिए और आदिवासी सहित भारत का विकास कैसे किया जा सकता है इसके विज्ञान को रेखांकित करती है। इसमें उसके साकार स्वरूप ब्रह्म रूप को देखा जा सकता है। यह पुस्तक यह भी माँग करती है कि राष्ट्र निर्माण हेतु शिक्षण संस्थानों के नेतृत्व कर्ता को अपने देशकाल में किये गए कार्यों को लिखना चाहिए जिससे यह स्पष्ट हो सके कि आपने-अपने हिस्से का कितना योगदान किया गया है, उसमें कौन सी बाधाएँ उत्पन्न हुई हैं, और हो सकती हैं तथा किस प्रकार से उसका समाधान किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

- 1 टी वी कट्टीमनी, जंगली कुलपति की कथा(हिंदी अनुवाद- डॉ. रेशमा नदाफ), शिल्पायन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृ. आदिवासी विश्वविद्यालय की आत्मकथा
- 2 वही

- 3 वंदना टेटे(सं.), आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, 2015
- 4 महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2017
- 5 वाहरु सोनवणे, पहाड़ हिलने लगा है (अनुवाद -निशिकांत ठकार), शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली। संस्करण 2009, पृ. 5
- 6 राम चन्द्र, प्रवीण कुमार (सं.), 'हिंदी दलित आत्मकथाएँ: स्वानुभूति एवं सर्जना का परिप्रेक्ष्य। एकेडमिक पब्लिकेशन, दिल्ली। 2018, पृ.295
- 7 जंगल पहाड़ के पाठ, पृ.14
- 8 जंगली कुलपति की कथा, पृ. 117
- 9 जंगली कुलपति की कथा, पृ.43
- 10 जंगली कुलपति की कथा, पृ.49
- 11 अश्विनी कुमार पंकज (सं.), आदिवासियत(जयपाल सिंह मुंडा के चुनींदा लेख और वक्तव्य), प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, झारखण्ड, 2018

◆सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक , मध्य प्रदेश-४८४८८७
ई-मेल- pravinkmr05@gmail.com
मोबाइल -9752916192

‘मुक्तिपथ’ उपन्यास की सामाजिक चेतना



शोध-सार:- ‘मुक्तिपथ’

उपन्यास को इलाचंद्र जोशी का सामाजिक उपन्यास माना जा सकता है, क्योंकि उपन्यास में सामाजिक समस्या का चित्रण मुख्य रूप से किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है। समाज में व्याप्त गरीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, सड़ी-गली परम्परा का निर्वाह जैसी

◆ऋषिकेश श्रीवास्तव

समस्याओं का चित्रण उपन्यास में प्रमुखता से किया गया है। राजीव गरीब तथा बेरोज़गार है। गरीबी में जैसे-तैसे वह अपनी पढ़ाई पूरी करता है, लेकिन रोज़गार के लिए लखनऊ की सड़कों पर भटकता रहता है। अखबारों में महत्वहीन, किन्तु सनसनी फैलानेवाली झूठी खबरें छापना भ्रष्टाचार ही है। समाज का ढोंग से भरा आडंबरपूर्ण रूप वर्तमान समाज की विशेषता-सी हो गयी है। राजीव की बहन रामा के चौदह वर्ष के होते ही गाँववाले उसके संबंध में कानाफूसी करने लगते हैं, जिससे राजीव

की माँ बेटे के लिए योग्य वर ढूँढने लगती है, लेकिन कोई योग्य वर न मिलने पर एक अधेड़ जो पहले ही दो पत्नियों को परलोक भेज चुका है उससे रामा न चाहते हुए भी विवाह कराने के लिए तैयार हो जाती है। उपन्यास की नायिका सुनन्दा उन विधवाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें समाज के धर्माडंबर के कारण इस लोक के निश्चित मानवीय अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। विजय नामक पात्र राजनीति के उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है जो राष्ट्रहित के लिए नहीं, बल्कि निजी स्वार्थ के लिए देश प्रेम का नाटक करते हैं। भारतीय समाज में अंधविश्वास का होना कोई नई बात नहीं है। राजीव जिस ज़मीन पर खेती करना चाहता था, उस ज़मीन को गाँववाले अंधविश्वास के कारण छूना भी पाप समझते हैं।

बीज-शब्द : तत्कालीन, यथार्थ, सामाजिक, समस्या, भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, अंधविश्वास, सड़ी-गली परम्परा, आडंबरपूर्ण, कानाफूसी, विचार, फिटन, कोलाहल आदि।

मूल आलेख :

‘मुक्तिपथ’ इलाचन्द्र जोशी का एक चर्चित उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 1948 में हुआ था। ‘मुक्तिपथ’ से पहले इलाचन्द्र लगभग पाँच उपन्यास लिख चुके थे और ऐसा माना जाता है कि इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य व्यक्ति का मनोविश्लेषण था। ‘मुक्तिपथ’ और इसके बाद के उपन्यासों में इन्होंने व्यक्ति के मनोविश्लेषण के साथ ही व्यक्ति की सामाजिक चेतना का चित्रण भी किया है। समाज का महत्व व्यक्ति के लिए हमेशा से बना हुआ है। कदाचित यही कारण है कि साहित्य के केन्द्र में समाज रहता है। साहित्य की अलग-अलग विधाओं में समाज का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है अथवा भिन्न-भिन्न समाज को आधार बनाकर साहित्यकार साहित्य की रचना करता है। साहित्यकार जिस समाज में पलता है उसकी रचना में उस समाज का, उसके परिवेश का प्रभाव रहना साधारण बात है, “लेखक-जीवन का अपना अनुभूत

सत्य भी उसके अपने समाज और राष्ट्र का व्यापक सत्य होता है।”¹ साहित्यकार विवेचन द्वारा समाज का मूल्यांकन करता है और लोक-अनुकूल समाज की विशेषताओं से हमारी पहचान करवाता है। समाज का स्वरूप व्यापक होने के कारण समस्याएँ भी अनेक हैं। उल्लेखनीय है कि साहित्यकार की विभिन्न रचनाओं में वर्णित सामाजिक समस्याएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। साहित्यकार सामाजिक समस्याओं में से किसी एक या सभी समस्याओं को केंद्र में रखकर साहित्य का सृजन करता है। कहना अनुचित न होगा कि साहित्य में समाज प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में चित्रित रहता है। विवेचित उपन्यास में व्यक्ति की सामाजिक चेतना को उद्घाटित किया गया है, ‘मुक्तिपथ’ का नायक समाजवादी विचारधारा का व्यक्ति है।²

‘मुक्तिपथ’ के अध्ययन से समाज में व्याप्त समस्याओं की जानकारी मिलती है जिससे उन समस्याओं के समाधान के लिए हमें दृष्टि मिलती है। उपन्यास समाज से अछूता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। “मुक्तिपथ, प्रमुखतः सामाजिक उपन्यास है, इसमें मनोवैज्ञानिक ऊहापोह अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कम है।”³ प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है। ‘मुक्तिपथ’ उपन्यास की आरम्भिक पंक्तियों में जिस वातावरण का उल्लेख किया गया है उससे ज्ञात होता है कि हमारे शहरों का परिवेश कितनी भीड़ भरा होता है। चौराहों पर अखबार बेचनेवालों का शोर मचा हुआ है तो मोटरों का कोलाहल भी कम नहीं है। उक्त प्रकार के वातावरण में उपन्यास का नायक राजीव एक फिटन को देखकर सोचने लगता है कि ऐसे विकट वैषम्य की प्रतिमूर्तियाँ भी हमारे समाज में उपस्थित हैं। इतना ही नहीं, इस चरम विषमता को स्वाभाविक समझकर समाज उसे यथा रूप में स्वीकार किया हुआ है। राजीव को सारा कोलाहल तुच्छ स्वार्थ-पूर्ति के लिए आडंबर के अलावा और कुछ नहीं लगता है। जीविका को चलाने के लिए बाज़ार में झूठ बोलकर जनता को गुमराह किया जा रहा है, जिसे मनुष्य ने सृष्टि का आवश्यक अंग मान

लिया है और ज़ोर-शोर से झूठ बोला जा रहा है। दुकानदार मीठी, किंतु झूठी बातें बोलकर ग्राहकों को ठगते हैं। अखबार बेचनेवाले अखबारों में महत्वहीन, किन्तु सनसनी फैलानेवाली झूठी खबरें छापकर रुपये कमाने के कार्य में व्यस्त हैं। समाज का ढोंग से भरा आडंबरपूर्ण रूप वर्तमान समाज की विशेषता हो गया है। शोषण करनेवालों ने जीवन की सहज प्रगति का रास्ता रोक रखा है।

राजीव जीविका की तलाश में तीन सप्ताह से लखनऊ में भटक रहा है, किन्तु उसे रोज़गार नहीं मिलता है। वह देशप्रेम की सच्ची भावना के कारण क्रांतिकारी दल का सदस्य बनता है और जेल का जीवन बिताता है। जेल से बाहर आने पर उसने युद्ध से ध्वस्त, अभाव से ग्रस्त, नैतिक पतन और भ्रष्टाचार से युक्त मानव जीवन का जो रूप देखा उससे उसके मन में विचार आता है कि मनुष्य सिर्फ जेल में ही बँधा नहीं है, बल्कि बाहर भी मानव बंधनों से जकड़ा हुआ है। सड़ी-गली और भयाक्रांत वातावरण में उसे लगता है कि उसका दम घुटा जा रहा है। कारावास में उसे घोर नारकीय यातनाएँ दी गयी थीं जिससे उसके मन में सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष का भाव जागृत होता है। यद्यपि वह मानवता की कमज़ोरियों से परिचित था, लेकिन जेल की यातनाओं के पूर्व वह इस बात की कल्पना नहीं कर सकता था कि एक मानव दूसरे मानव के साथ इस प्रकार का नृशंस व्यवहार कर सकता है। शासन व्यवस्था चलानेवाले अपने को सभ्य मानते हैं, किन्तु कैदियों के साथ बर्बर प्रति हिंसा के साथ पेश आते हैं। कैदियों से दिन भर मशीन की तरह काम लेने के बाद उन्हें अखाद्य भोजन दिया जाता है। क्या यही उनकी सभ्यता है?

राजीव के पिता एक साधारण सिपाही से जमादार के पद पर पहुँचे ही थे कि उन्हें प्रथम महायुद्ध के कारण फ्रांस जाना पड़ा, जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। ज़मीन पर अपनी बादशाहत कायम रखने के लिए अनेक सिपाहियों को मौत के मुँह में ढकेल दिया जाता है। पति की मृत्यु के बाद ससुराल

की तरफ से कोई सहानुभूति न होने पर उसकी माँ मायके में रहने लगती है। उसकी माँ जब मायके पहुँची तब उसके भाइयों और उनकी पत्नियों ने आरम्भ में उसका स्वागत नहीं किया, किन्तु जब उसकी माँ ने पेंशन में से कुछ हिस्सा उन्हें देना शुरू कर दिया तब वे लोग माँ को साथ में रखने के लिए राजी हुए। यह हमारे समाज का कटु सत्य है। राजीव की बड़ी बहन रामा के चौदह वर्ष हो जाने पर गाँववाले उसके संबंध में कानाफूसी करने लगते हैं, जिससे राजीव की माँ उसके लिए योग्य वर ढूँढने लगती है। कोई योग्य पात्र न मिलने पर एक अधेड़, जो पहले ही दो पत्नियों की मृत्यु का कारण बन चुका था, उससे उसकी शादी करवा दी जाती है। राजीव की माँ यह सोचकर संतोष कर लेती है कि दुल्हा की सांसारिक स्थिति अच्छी है। इसलिए उसके पल्ले बाँध देने पर लड़की को प्रतिदिन की ज़रूरतों को जुटाने की समस्या से छुटकारा मिल जायेगा। रामा न चाहते हुए भी ऐसी परिस्थितियों में विवाह के लिए तैयार हो जाती है।

उपन्यास की नायिका सुनंदा की अनाथ अवस्था के कारण उमाप्रसाद ने उसे अपने यहाँ रखा था। वह हाई स्कूल तक पढ़ी हुई है। भारतीय समाज में किसी विधवा के लिए यह अनुचित है कि वह किसी भी पुरुष के साथ एकांत में बातें करे। सुनंदा के वैधव्य के माध्यम से धर्म के ठेकेदारों पर व्यंग्य किया गया है- “सुनंदा के लिए इस लोक के हित से भी अधिक परलोक के हित की आवश्यकता है।”⁴ धर्म ध्वजियों ने और उनके पूर्वजों ने सदियों से सरल, विश्वास परायण समाज को बहकाकर उनके मन में परलोक का ऐसा आतंक जमा रखा है कि आज के युग में भी मनुष्य जीर्ण संस्कारों का अनुसरण अंध भाव से करता जा रहा है। समाज के धर्माडंबर की वजह से अनेक असहाय विधवाओं को इस लोक के निश्चित मानवीय अधिकारों से वंचित किया जाता है। समाज की यह मूर्खता नहीं तो और क्या है कि एक विधवा को उसका अधिकार अंधविश्वास के निमित्त नहीं देता है। आधुनिक कहे जानेवाले समाज में भी विधवाओं के प्रति हमारा

दृष्टिकोण अभी तक नहीं बदल पाया है।

समाज में अशिक्षा का एक मूल कारण गरीबी है। दूसरी तरफ शिक्षा दिन प्रतिदिन महँगी होती चली जा रही है। इसलिए गरीब के साथ मध्य वर्ग के लिए भी शिक्षा दूर का पकवान बनता जा रहा है। हमारे समाज की यह परम्परा रही है कि लड़कों की तुलना में लड़कियों की पढ़ाई पहले बंद की जाती है। लड़कियों की पढ़ाई जल्दी बंद हो जाने के पीछे समाज का जो तर्क है वह किसी भी दृष्टि से सही नहीं कहा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लड़कियों का जल्दी जवान हो जाना उनकी शिक्षा के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहिए। समाज में यह भी देखा जाता है कि लड़कियों के 14-15 वर्ष के होते ही माता-पिता जल्द से जल्द उनका विवाह करवाने पर जोर देते हैं। सुनंदा के पिता शिक्षित होने के नाते अपनी पुत्री के लिए ऐसे वर की तलाश में थे जो योग्य हो, रुपये-पैसे का लोभी न हो और लड़की के रूप और गुण को ही अधिक महत्व देता हो, किन्तु धीरे-धीरे उनके सामने समाज की यह सच्चाई आने लगी कि उक्त गुणवाला वर सिर्फ स्वप्नों की दुनिया या किस्से-कहानियों में ही संभव हो सकता है, यथार्थ जीवन में नहीं। यथार्थ के थपेड़ों ने उन्हें प्रगतिशील बना दिया था। अतः उनका विचार बनने लगा कि बेटी को स्वयं का जीवन-निर्वाह करने योग्य बना दिया जाए। उसके बाद विवाह हुआ तो अच्छा न होगा तो भी कोई बात नहीं, किन्तु हमारी माताएँ अपनी बेटी को क़ाँरी नहीं देख सकती हैं। अतएव सुनंदा की माँ बेटी के विवाह के लिए हाय-तौबा मचाये रहती थीं। अंततः सुनंदा का विवाह एक अधेड़ से कर दिया जाता है, जो साथ में तीन-चार बच्चों का पिता है। पुराने समय में हमारे समाज में एक से अधिक विवाह करने का प्रचलन था, जो निस्संदेह सामाजिक कुरीति थी। “मेरे मामा ने जब दूसरी शादी की थी तब उनके सब बाल पक चुके थे।”⁵ राजीव की बड़ी बहन का विवाह जिससे होता है उस वर का यह तीसरा विवाह था। सुनंदा का विवाह जिस लड़के से होता है उसका भी यह तीसरा विवाह है। राजीव के मित्र विजय ने दो

शादियाँ की थीं। विजय की पत्नी कांति के पिता ने भी दो विवाह किए थे।

विजय नामक पात्र राजनीति के उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है जो राष्ट्रहित के लिए नहीं, बल्कि निजी स्वार्थ के लिए देशप्रेम का नाटक रचता है, “वह तो अपने किसी दूर स्थित किंतु निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए जेल जाना चाहता था, न कि किसी राष्ट्रीय आकुलता से प्रेरित होकर।”⁶ विजय द्वारा कुछ सभाएँ वास्तविक उद्देश्य से प्रेरित होकर की जाती थीं, तो कुछ निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए नाटकीय ढंग से होती थीं। विजय ने अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए नाटकीय सभाओं में से किसी एक में भाग लेकर जेल जाना उचित समझा। उल्लेखनीय है कि राजनीतिक कैदियों को जेल में विशेष सहूलियत दी जाती है। उन्हें जेल के अंदर रोज़मर्रा की ज़रूरतमंद चीज़ें उपलब्ध करवायी जाती हैं। समाज में होनेवाले इस प्रकार के अनीति-पूर्ण कार्य का उल्लेख इलाचंद्र ने प्रस्तुत उपन्यास में बखूबी किया है। विजय को नाटकीय सभा में नाटकीय भाषण देने के लिए एक महीने की जेल की सजा होती है। प्रारम्भ में उसे निम्न श्रेणी के जेल में रखा गया। लेकिन विजय के द्वारा जेल वार्डन को प्रसन्न कर लेने पर उसे निम्न श्रेणी से अच्छे जेल में रख दिया जाता है और समय-समय पर उसके लिए सिगरेट, पान, चाय और टोस्ट का प्रबंध वार्डन की विशेष कृपा से हो जाता था।

राजीव झूठी सामाजिकता और अंध परम्परा के जाल से स्वयं को घेरा हुआ अनुभव करता है, क्योंकि समाज में विद्वेष की भावना व्याप्त है। कृष्णा जी का बार-बार आकर राजीव और सुनंदा की बातचीत के बीच में कुछ कहना विद्वेष की भावना से प्रेरित है। क्लर्क पिता के लिए अपनी बेटी सुनंदा को उच्च शिक्षा दिलवाना संभव नहीं है। राजीव मध्यवर्ग के सीमित और संकीर्ण परिवारवाद को विस्तृत और बृहत कौटुम्बिकता में बदल देना चाहता है। उसके विचार से तत्कालीन समय मानवता का संकट काल है। सुनंदा बिलसिया द्वारा

लगाए गए आरोपों से दुखी होकर फाँसी लगाकर आत्महत्या करने का विचार करती है। लेकिन बाद में वह उन पर विजय पाती है। “रूढ़िगत संस्कारों के उन्हीं बासी, गंदे और दुर्गंधपूर्ण दलदल में जा फँसी, जिससे उबारने के लिए इतना बड़ा प्रयत्न उन्होंने किया। नहीं, वह नहीं होगा। मैं ऐसा नहीं होने दूँगी।”⁷ समाज में ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं है जो नेतृत्व क्षमता रखती हैं। सुनंदा ऐसी ही स्त्री है। सुनंदा के माध्यम से नारी मुक्ति की समस्या भी उपन्यास के केन्द्र में है। वर्तमान नारी को किसी प्रकार के बंधन में नहीं रखा जा सकता है, वह स्वतंत्र विचरण कर सकती है।

भारतीय समाज में जिस प्रकार पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की छूट थी इसके विपरीत विधवा स्त्रियों के लिए कठोर नियम थे, जिसका उल्लेख उपन्यास में किया गया है। सुनंदा का राजीव से मिलना कृष्णा जी को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह विधवा है। विधवाओं का किसी पराये मर्द के आगे चलना, आधी रात अकेले मर्द के साथ हँसी-ठिठोली करना हमारे समाज में वर्जित है। “सुनंदा एक भारतीय विधवा है, अतः प्रेम की अधिकारिणी नहीं। इस युग में, प्रगतिवादी युग में, विज्ञानवादी युग में, सभ्य समाज में भी विधवाओं का यथोचित मान नहीं हो रहा। उनका प्रेम उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है।”⁸ मनुष्य द्वारा विधवाओं के लिए बनाए गए अनैतिक नियमों को उपन्यास में प्रमीला ने तोड़ा है। भारतीय समाज में विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता था, किन्तु प्रमीला के उद्योग से राजीव और सुनंदा का मिलन होता है। किसी असहाय और विवश विधवा को घृणित रूप से प्रताड़ित करना, उसके सतीत्व और उसके चरित्र को कलंकित करना आम बात है। वस्तुतः ऐसे क्रियाकलाप और मानसिकतावाला समाज स्वस्थ नहीं हो सकता है। रीति-रिवाजों के कारण विधवाओं का जीवन-यापन कठिन समस्या बन जाती है। विधवाएँ अन्यायपूर्ण परम्पराओं को

सही मान लेती हैं और अधिकांश विधवाएँ समाज के सड़े-गले नियमों को तोड़ नहीं पाती हैं।

भारतीय समाज में अंधविश्वास का होना कोई नई बात नहीं है, विशेषकर ग्रामीण समाज में अंधविश्वास दिखाई देता है। राजीव जिस ज़मीन पर खेती करना चाहता था, उस जमीन को गाँववाले अंधविश्वास के कारण छूना भी पाप समझते हैं। उस पर खेती करना तो दूर की बात थी। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में अंधविश्वास था जिसके कारण लोग अपनी जीवन-स्थिति में सुधार लाने का कोई प्रयत्न नहीं कर पा रहे थे। उक्त ज़मीन के विषय में गाँववालों का विश्वास है, “जो व्यक्ति उस ज़मीन को खोदेगा या उसमें हल चलायेगा उसकी मृत्यु तो होगी ही, साथ ही उसके कुनबेवालों को भी बड़ी दुर्गति से होकर गुज़रना पड़ेगा।”⁹ अंधविश्वास इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में फैलता जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का सफल चित्रण हुआ है, “मुक्तिपथ एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें भारतीय विभाजन के पश्चात भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का सफल चित्रण हुआ है।”¹⁰ उपन्यास में शरणार्थियों की जिस दशा का चित्रण किया गया है, वह मनुष्य को चिंतन करने के लिए उद्वेलित करता है। शरणार्थियों का जीवन बहुत कष्ट में गुज़रता है। बड़ी परेशानी के बाद वे अपने और अपने घरवालों के लिए दो वक्त का भोजन जुटा पाते हैं। शरणार्थियों में अंधविश्वास की कमी नहीं थी, जिसके कारण वे वर्जित ज़मीन पर हल नहीं चलाना चाहते थे। यही नहीं, उनमें परिश्रम की भावना भी नहीं होने के कारण उनमें हल चलाने का परिश्रम करनेवालों की संख्या बहुत कम थी।

वर्तमान समाज में दिखावे को ज़्यादा महत्व दिया जा रहा है। इस ओर भी उपन्यासकार ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। कदाचित यही कारण है कि वर्तमान समय को प्रदर्शन का युग माना जाता है। रमला गिडवानी की संस्था स्त्री

समाज पर हो रहे अत्याचारों और अन्यायों का विरोध करती है, लेकिन अपनी योजना को कार्य रूप में परिणत करने के लिए कोई योजना उनकी संस्था के पास नहीं है, जो प्रमाणित करता है कि लोग प्रदर्शन को अधिक महत्व और कार्य को कम महत्व दे रहे हैं। आज के समय में सभी क्षेत्रों में शब्दों का जाल बिछाने और कागज़ी घोड़े दौड़ाने से ही काम बनता है; वास्तविक प्रयोगों से नहीं। सरकार या सरकारी विभागों पर तभी प्रभाव पड़ता है जब किसी बात को खूब चिल्ला-चिल्लाकर कहा जाए। युद्ध की प्रवृत्ति समाज में लाखों वर्ष से पायी जाती है। समाज के विकास और हास के बावजूद युद्ध के प्रति दृष्टिकोण में ताज़गी बनी हुई है। युद्ध पर ही आज की अंतर-राष्ट्रीय व्यवस्था आधारित है। वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति सर्वत्र असंतोष फैला है, जिसमें बदलाव की आवश्यकता है। असंतोष के कारणों को पहचान कर उसे समाज से मिटाना होगा।

निष्कर्ष- उपन्यासकार ने 'मुक्तिपथ' के माध्यम से समाज में उच्च मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। समाज की कुरीतियों से पर्दा हटाकर एक स्वस्थ समाज की स्थापना की कामना उपन्यास में व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त की गयी है। उपन्यास का मूल मन्तव्य है, व्यक्ति चाहे जैसी परिस्थिति में क्यों न हो उसे समाज के कल्याण में योगदान देना चाहिए। व्यक्ति को स्वयं के दुखों और कष्टों से ऊपर उठकर समाज के विकास में अपनी मुक्ति के मार्ग की तलाश करनी चाहिए। नायक राजीव के माध्यम से यह उद्घोष किया गया है कि कर्म ही जीवन है और कर्महीनता ही मृत्यु। अर्थ संग्रह की महत्वाकांक्षा व्यक्ति को पतित कर देती है, यह हमें विजय नामक पात्र के चरित्र से ज्ञात होता है। कहना अनुचित न होगा कि समाज से संबंधित विभिन्न समस्याओं के चित्रित होने के कारण उन मुद्दों के प्रति सचेतनता आती है। राजीव के रूप में बेकार युवकों की दुर्दशा पर विचार किया गया है, तो वहीं सुनन्दा के माध्यम से भारतीय विधवाओं की दारुण व्यथा की

कथा कही गयी है। उपन्यास में वर्णित राजनीतिक भ्रष्टाचार का उल्लेख हमारा ध्यान वर्तमान राजनीतिक परिदृश्यों की ओर आकर्षित करता है।

संदर्भ सूची:

1. लक्ष्मीसागर वाष्णेय, हिंदी उपन्यास: उपलब्धियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण (आवृत्ति)- 1973, पृष्ठ-11
2. बच्चन सिंह: छायावादोत्तर काल: गद्य-साहित्य, हिंदी साहित्य का इतिहास (सं. डॉ. नगेन्द्र), मयूर पेपरबैक्स प्रकाशन, नोएडा, तैंतीसवाँ संस्करण- 2007, पृष्ठ- 674
3. मफतलाल पटेल, इलाचंद्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का मनोविश्लेषण, लाईब्रेरी बुक हाउस प्रकाशन, अहमदाबाद; संस्करण-2012, पृष्ठ-116
4. इलाचंद्र जोशी, मुक्तिपथ, हिंदी भवन इलाहाबाद; दूसरा संस्करण-1951, पृष्ठ- 55
5. वही, पृष्ठ- 82
6. वही, पृष्ठ- 103
7. वही, पृष्ठ- 134
8. प्रेम भटनागर, इलाचंद्र जोशी: साहित्य और समीक्षा, मध्यप्रदेश साहित्य प्रकाशन, बिलासपुर; संस्करण-1959, पृष्ठ-142
9. इलाचंद्र जोशी, मुक्तिपथ, हिंदी भवन, इलाहाबाद; दूसरा संस्करण-1951, पृष्ठ- 308-309
10. प्रेम भटनागर, इलाचंद्र जोशी; साहित्य और समीक्षा, मध्यप्रदेश साहित्य प्रकाशन, बिलासपुर; संस्करण-1959, पृष्ठ-141

♦शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
एवं प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक
जवाहर नवोदय विद्यालय, मयूरभंज, ओडिशा।
दूरभाष- 9851667716

ई-मेल -rishikeshsrivastava134@gmail.com

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्यता : श्रीलाल शुक्ल के विशेष सन्दर्भ में



सारांश-भारतीय संस्कृति विश्व विख्यात प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, जो कई संस्कृतियों को आत्मसात करने में सफल रही है। अपनी इसी आत्मसात् तथा समन्वयकारी प्रवृत्ति के कारण भारतीय संस्कृति व्यापक व श्रेष्ठ बनी रही है, किन्तु परिवर्तित हो रहे समाज ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था व संस्कृति को भी धीरे-धीरे बदल दिया है। इस सांस्कृतिक और परिवर्तनशील समाज में श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों के द्वारा एक प्रबल सांस्कृतिक चेतना की झलक दिखाई है। प्रशासन से हिंदी साहित्य-सृजन के क्षेत्र में आये श्रीलाल शुक्ल हिंदी कथा- साहित्य तथा व्यंग्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। श्रीलाल शुक्ल में अनुभव, सूक्ष्म दृष्टि और कल्पनाशीलता का सामंजस्य है, जिसके माध्यम से वे अपनी रचनाओं में सामाजिक बंधनों, कुरीतियों, भ्रष्टाचारों तथा अन्यायों का पर्दाफाश करते हैं। उनके उपन्यासों में गाँव की संस्कृति पर शहरीकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। वर्तमान समय में लोग विदेशी संस्कृति की नक़ल करने में लगे हैं। इस आलेख में भारतीय संस्कृति और पाश्चात्यता के अन्तः सम्बन्ध व पारस्परिक क्रिया-व्यापार का विश्लेषण श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में किया गया है।

बीज शब्द: संस्कृति, रीति-रिवाज़, भारतीयता, भूमंडलीकरण, आधुनिकता, पश्चिमी सभ्यता, संस्कार, मानवता।

संस्कृति वस्तुतः मानवता का मेरुदंड है, जो स्थान विशेष के रीति-रिवाज़ों, उत्सवों, कलाओं, आचार-विचारों, रंग-रूपों आदि को प्रकट करते हुए निश्चित आदर्शों को प्रतिष्ठित करती है। "संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'सम' उपसर्ग तथा 'घ' प्रत्यय लगाने से

♦ डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट

बनता है, जिसका अर्थ है- सुधारना, या परिष्कार करना।"1 अंग्रेज़ी में संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कुल्लुरा' (cultura) शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है- पैदा करना, जोतना, विकसित करना, संवर्द्धना या परिष्कृत करना। डॉ. श्याम सुन्दरदास ने "संस्कृति को रहन-सहन की रीढ़ माना है।"2 आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का नाम है।"3 लालचन्द्र प्रार्थी लिखते हैं- "देश और उसके लोगों की परम्पराओं और अनुश्रुतियों, उनके रीति-रिवाज़ों, उनकी कला, भाषा यहाँ तक कि समूचे रूप में उनकी संस्कृति से न केवल उनका अतीत प्रकाश में आता है, बल्कि लोगों की विचारधाराओं से उनके भविष्य के बारे में भी अंदाज़े लगाए जा सकते हैं और वास्तविकता यह है कि जनता की संस्कृति की कहानी किसी देश की असल कहानी होती है।"4 पाश्चात्य विद्वान ई. बी. टाइलर के अनुसार culture is "that complex whole which includes knowledge, belief, art, law, morals, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society."5 अतः कहा जा सकता है कि मानवीय विचार, कर्म, परम्पराएँ, विधि-विधान व नियम, शिक्षा, नैतिकता आदि जो मानव के विभिन्न कारकों जैसे धार्मिक, लौकिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक क्रियाकलापों के कारण परम्पराओं का रूप धारण करते हैं, संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।

उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्ति और परिवर्तनशील समाज में श्रीलाल शुक्ल जैसे उपन्यासकारों के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना की प्रबल अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में गाँव की संस्कृति पर शहरीकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

।वर्तमान समय में लोग विदेशी संस्कृति की नक़ल करने में लगे हैं। युवा वर्ग इस प्रवृत्ति का अंधानुकरण कर रहा है, जिसका उल्लेख लेखक ने उपन्यास 'सीमाएँ टूटती हैं' के महाविद्यालय के छात्रों व छात्राओं के माध्यम से किया है, जो पाश्चात्य संगीत तथा वेशभूषा के प्रति आकृष्ट हैं- "कॉलेज के कुछ लड़के रंगीन कमीजों, घिसी हुई जीन और ऊँचे बूटों में लम्बे बाल और फूटी हुई मूँछों-दाड़ियों से, फुटपाथ पर टहल रहे थे। कुछ देर पहले वे ही हाउस में जाकर ताबड़तोड़ अंग्रेज़ी बोल रहे थे। गिरोह राजनाथ की दुकान के सामने से गुज़रा। दुकान में नाच की एक धुन बज रही थी जिस पर उनके पैर थिरकने लगे, मुँह से वही धुन निकालते हुए वे दुकान में घुस आए। काउंटर के पीछे एक लड़की किसी ग्राहक से बात कर रही थी। एक लड़के ने मोटे फ्रेम का चश्मा उतारकर बहुत मुलायम आवाज़ में अनिवार्य अंग्रेज़ी के सहारे एक पॉप-म्यूज़िक के रिकॉर्ड के बारे में पूछा।"⁶

'राग दरबारी' उपन्यास में भी पश्चिमी वेशभूषा के प्रति लोगों का आकर्षण दिखाई देता है। यथा- "अंग्रेज़ी पोशाक में लोग तने हुए आते थे और तने हुए निकल जाते थे।"⁷ इसी प्रकार 'मकान' नामक उपन्यास में नगर निगम के एडमिनिस्ट्रेटर की बेटी उतरा का अंग्रेज़ी भाषा पर पूर्ण अधिकार तथा हिंदी भाषा का अल्पज्ञान, उसपर पाश्चात्य प्रभाव की पुष्टि करते हैं।

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति हावी होती जा रही है। इस बात की पुष्टि 'बिस्वामपुर का संत' उपन्यास के माध्यम से भी होती है, जिसमें कुँवर जयंती प्रसाद, मुख्यमंत्री तथा जयश्री जैसे सीधे-साधे लोग भी आधुनिक युग की चमक-दमक देखकर मॉडर्न बनने की होड़ में शामिल हो जाते हैं। यह पाश्चात्यता हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी है। यह इसका प्रभाव ही है कि जिसके चलते उपभोक्तावादी संस्कृति अपना एक अलग रूप धारण करती जा

रही है। शुक्ल जी ने उपन्यास 'राग दरबारी' में यह दिखाया है कि किस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग कर ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है- "चारों ओर अंग्रेज़ी की बहार थी। अंग्रेज़ी के विज्ञापन। अंग्रेज़ी में ही दुकानों के नाम...।"⁸

लेखक ने पाश्चात्य संस्कृति से आकर्षित होकर उसका अनुसरण करते हुए तथा भारतीय परिवेश तथा मर्यादा को भंग करती, पाश्चात्य संस्कृति के भुलावे में आकर पथभ्रष्ट होती पीढ़ी का वर्णन किया है। 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास इसका सशक्त उदाहरण है, जिसमें विमल नामक सैतालीस वर्षीय व्यक्ति अपने मित्र की बेटी, चाँद, से प्रेम करता है। वह चाँद के अतिरिक्त जूली नामक महिला से भी शारीरिक संबंध रखता है। चाँद द्वारा स्वच्छन्द प्रवृत्ति के अनुसार जीवन जीने का निर्णय लेते हुए पिता के मित्र के साथ रोमांस करना भारतीय संस्कृति की सीमा के उल्लंघन व अतिक्रमण हैं। यथा- "जब शुरू शुरू में हमें एक दूसरे के लिए खिंचाव महसूस हुआ, मैं चौकन्ना हो गया। मैंने अपने-आप से कहा, यह भद्दी बात है। यह तुम्हारे दोस्त की लड़की है, तुमको अंकल कहती है, तुम भी कोशिश करो और अंकल बन जाओ।" पर कोशिश करने का सवाल नहीं था, क्योंकि अंकल मेरे या उसके लिए कोई रिश्ता नहीं था, वह एक नाम भर था।"⁹

'मकान' उपन्यास का सितार वादक नारायण, अपनी शिष्या श्यामा से अभद्र व्यवहार करता है। नारायण के माध्यम से लेखक ने दम तोड़ते हुए शास्त्रीय संगीत तथा पश्चिमी संगीत के लिए बढ़ती छटपटाहट को दिखाया है। भारतीय संस्कृति में संगीत-साधना को आस्था, विश्वास, शांति, गुरु-शिष्य परम्परा व मान-मर्यादा के द्योतक माने जाते हैं, परन्तु इसी सत्ता-साधना को नारायण अपने अभद्र व्यवहार द्वारा विघटित करते हुए दर्शाया गया है।

भारत विविधताओं का देश है। यह

विविधता भाषा, धर्म, संस्कृति आदि में पाई जाती है। यहाँ प्रत्येक प्रदेश अपनी विशेष संस्कृति के लिए जाना जाता है। प्रत्येक क्षेत्र अथवा राज्य अपनी विशिष्ट वेशभूषा के लिए मान्य है। बदलते समय के साथ भारतीय परिधान में भी परिवर्तन होते रहे। इस परिवर्तन के चलते कई प्रकार के वस्त्र प्रचलन में आए। भारत में मुसलमानों तथा अंग्रेजों के आगमन से भी भारतीयों की वेशभूषा बिलकुल ही बदल गई, जिसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर दिखाई देता है। शुक्ल जी ने इस सांस्कृतिक परिवर्तन को अपने उपन्यासों के माध्यम से सशक्त रूप से व्यक्त किया है। शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों में वेशभूषा के मुख्यतः दो रूपों- परम्परागत तथा परिवर्तित वेशभूषा- का उल्लेख किया है तथा कहीं-कहीं पर दोनों के मिश्रित रूपों का भी चित्रण किया है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में लेखक पैंतीस वर्षीय युवक की वेशभूषा का चित्रण करते हैं, जो पाश्चात्य संस्कृति तथा वेशभूषा से प्रभावित है- "साँवले रंग का, घरहरा, लम्बा सा, लगभग पैंतीस साल का युवक था। लम्बा चेहरा, पतली कटी हुई मूछें, धूल भरे बाल, ऊँची खाकी पतलून, चुस्त अमेरिकन जैकेट, इन सब से यही लगता था कि हालीवुड के किसी फ़िल्मी दृश्य से उतारकर सीधे कोठी पर नौकरी करने चला आया है।" ¹⁰

'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास में चाँद नामक पात्र भी पाश्चात्य वेशभूषा से प्रभावित दिखाई देता है, जो कपड़ों की खरीदारी करते समय केवल पाश्चात्य परिधान ही लेती है। यथा- "चाँद ने ज़्यादा छानबीन किए बिना कुछ बेलबोटम, पायजामे, स्लैकस, कमीज़ें, कुर्ते आदि खरीदे और उनका कैशमेमो कटवाने लगी।" ¹¹

लेखक ने एक ओर पाश्चात्यता से प्रभावित पात्रों का चित्रण किया है तो दूसरी ओर कुछ ऐसे पात्र भी दर्शाए हैं जो पारम्परिक तथा आधुनिकता को साथ-साथ लेकर चलते हैं। इसके उदाहरण हैं, 'मकान' तथा 'सूनी घाटी का सूरज' नामक

उपन्यासों की क्रमशः सिम्मी और सत्या, जो आधुनिकता को पारम्परिक रूप में संजोकर चलती हैं। यथा- "श्यामा के साथ जो लड़की आयी थी वह साँवले रंग की थी। उसकी साड़ी का रंग काला और लाल था; उसके माथे पर काले रंग की गावदम बिन्दी खिंची थी, बाल काले और खूब घने थे और उन्हें रबर के बैण्ड में समेटकर बाँध लिया गया था।" ¹²

'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास की 'सत्या' की वेशभूषा का चित्रण इन शब्दों में हुआ है- "उसने गहरे लाल रंग का भड़कीला ब्लाउज पहना है। वैसी ही भड़कीली गहरे नारंगी रंग की साड़ी सँवारकर पीछे जूड़ा बना लिया गया है। फिर भी मत्थे पर एक छोटी सी लट, एक घुँघराला ब्रेकेट बनाकर, बालों की असंख्यता में खो गई है।" ¹³

इसके अतिरिक्त शुक्लजी ने गाँधीवाद से प्रभावित लोगों की विभिन्न वेशभूषाओं को भी चित्रित किया है। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के आचार्य जी और मंत्री जी की वेशभूषा गाँधीवाद से प्रभावित है। आचार्य जी की गाँधीवादी वेशभूषा दर्शनीय है- "झीने खद्वर की बेश कीमती धोती और कुर्ते में सफ़ेद खाकी सिल्क की सदरी और कलफदार गाँधी टोपी के साथ उन्होंने अपने को 'मामूली आदमी' बनाने की कोशिश की थी।" ¹⁴ तो वही मंत्री जी भी गाँधीवादी वेशभूषा अपनाए हुए हैं- "मंत्रीजी उतने सीधे नहीं हैं जितने वे सफ़ेद खाकी की लुंगी, सफ़ेद लम्बी बनियाइन, चादर और महंतों जैसे घुटे हुए सिर में दिखते हैं।" ¹⁵ इन कथनों द्वारा जहाँ एक ओर गाँधीवादी वेशभूषा को अपनाकर आचार्य जी का स्वयं को एक आम आदमी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है तो दूसरी ओर व्यंग्य द्वारा मंत्री के छद्म रूप का चित्रण भी हुआ है।

आलोच्य उपन्यास में आचार्य विनोबा भावे द्वारा चलाया गया भूदान आन्दोलन के कार्यकर्ताओं की एक विशिष्ट वेशभूषा का चित्रण है, परन्तु यह वेशभूषा भूदान आन्दोलन तक ही सीमित है। शुक्ल जी ने भूदान यज्ञ सेवक का चित्र इन शब्दों में खींचा

हैं- “उनकी पोशाक भी अब पश्चिमी हो गई थी । उनकी धारणा बन गई थी कि सर्वोदय या भूदान आन्दोलन की बात करने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम पश्चिम में भिक्षुओं का भेष बनाकर जाएँ । इतने वर्षों तक जिस वेशभूषा को हम सम्मान से अपनाते रहे थे, वह अब उनकी निगाह में भिखमंगों की पोशाक थी । व्यवहार में उनका जीवन-दर्शन पूरी तरह से सुविधावादी हो गया था ।”¹⁶ इसके अतिरिक्त शुक्ल जी छद्म पहनावे की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं-“मोटी खादी की जगह अब हैंडलूम की एक कीमती साड़ी ले ली थी, जिसका चमकदार बोर्डर सूरज की भटकी हुई किरण को छूकर झिलमिला उठा था । कानों में घोंटे पर आकर्षक टोप, गले में पतली सोने की चेन और एक ऊंगली में अँगूठी जिसमें हीरा जड़ा था । आचार्य विनोबा भावे के आन्दोलन में धूल फाँकने वाली यह पहले वाली सुशीला नहीं थी ।”¹⁷

शुक्ल जी के उपन्यासों में भारत की सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर अपनाई गई वेशभूषा को भी दर्शाया गया है । भारतीय प्राचीन मान्यता के अनुसार विधवा स्त्री तथा विधुर पुरुष को सामान्य लोगों की अपेक्षा अपनी वेशभूषा में परिवर्तन लाना पड़ता है । जहाँ विधवा स्त्री को रंगों को त्याग कर सफ़ेद साड़ी को अपनाना पड़ता है, वहीं पुरुषों की वेशभूषा में भी परिवर्तन आता है । ‘मकान’ उपन्यास में इसका सशक्त उदाहरण देखने को मिलता है- “सफ़ेद लुंगी, सफ़ेद कुर्ते और हलके सिलेटी रंग की चादर में वे साधु जैसे ही जान पड़ते हैं, वैसे वे एक विधुर ग्रहस्थ हैं ।”¹⁸ इस प्रकार शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों में वेशभूषा के विभिन्न रूपों को सफलतापूर्वक दर्शाया है । इस संदर्भ में मुरली मनोहर प्रसाद सिंह कहते हैं- “दो संस्कृतियों के बीच चल रहे शीतयुद्ध की समकालीन हिन्दुस्तानी को जिस बारीकी से शुक्ल पकड़ पाए हैं और गद्य की वक्रोक्तिपूर्ण आभा के साथ उसे व्यंजित कर पाए हैं, संभवतः प्रेमचंद की कथाशैली से भिन्न उनकी यह विशिष्ट असंख्य पाठक समुदाय में उन्हें व्यापक रूप से लोकप्रिय बनाती है ।”¹⁹

निष्कर्ष- भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में स्पष्ट लक्षित होता है, जिसके विभिन्न आयामों तथा स्वरूपों को सूक्ष्मता के साथ लेखक ने अभिव्यक्त किया है। यद्यपि ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक मान्यताओं तथा परम्पराओं पर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु नगरों में यह प्रभाव हावी रहा है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में भी सांस्कृतिक चेतना प्रबल रही है। उनके उपन्यासों में भी गाँव की संस्कृति पर शहरीकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। शुक्ल जी ने एक ओर पाश्चात्य संस्कृति से आकर्षित होकर उसका अनुसरण करते हुए पात्रों को दिखाया है तो दूसरी ओर भारतीय परिवेश तथा मर्यादा को भंग करती पाश्चात्य संस्कृति के भुलावे में आकर पथभ्रष्ट होती पीढ़ी का वर्णन भी किया है। वास्तव में श्रीलाल शुक्ल जिस युग में उपन्यास-सृजन में प्रवृत्त थे, वह युग धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पुनर्जागरण का युग था। क्योंकि एक ओर जहाँ भारतीय जानता स्व-अस्तित्व के लिए संघर्षशील थी तथा दूसरी ओर धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में भी नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा था। वस्तुतः नागर जी दो धर्मों तथा संस्कृतियों के मिलन एवं समन्वय पर अधिक बल देते हैं। उनके उपन्यासों में हिन्दू-मुस्लिम साड़ी संस्कृति के मिश्रित रूप का चित्रण हुआ है। वहीं शुक्लजी के उपन्यासों में भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं तथा परम्पराओं के आधार पर वेशभूषा का सजीव चित्रण हुआ है। नागर जी की सांस्कृतिक चेतना का यह पक्ष अधिक मुखरित नहीं हो पाया है, क्योंकि नागर जी जहाँ एक ओर उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्चस्व का चित्रण करते हैं वहीं दूसरी ओर वे निर्धन असहाय लोगों के जीवन-यापन के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की कमी की समस्याओं का भी वर्णन करते हैं। निम्नवर्ग की आर्थिक विषमता उनकी जीवन-शैली, रहन-सहन, खान-पान आदि को नियंत्रित करती है। किन्तु जब यही वर्ग उच्चवर्ग की ओर अग्रसर होता है तो उसकी मानसिकता के

साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना में भी परिवर्तन आता है।

सन्दर्भ:

1. चव्हान, (डॉ.) अजीत. कहानीकार महीप सिंह संवेदना और शिल्प, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ.213
2. रायज़ादा, (डॉ.) कविता. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य की सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना; संजय प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2002, पृ. 56
3. वही, पृ. 57
4. अंजु. बोधा के काव्य में लोक-संस्कृति; अंकुर प्रकाशन, न्यू गुप्ता कॉलोनी, नई दिल्ली, संस्करण 1998; पृ. 09
5. मिश्र, ब्रजकुमार. उपन्यासकार अमृतलाल नागर; अंकुर प्रकाशन, न्यू गुप्ता कॉलोनी, नई दिल्ली; संस्करण 2006, पृ. 96
6. शुक्ल, श्रीलाल. सीमाएँ टूटती हैं; राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली, पृ. 60- 61
7. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, पृ. 246
8. वही, पृ. 246
9. श्रीलाल शुक्ल, श्रीलाल. सीमाएँ टूटती हैं, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली, पृ. 30

10. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली, पृ. 98
11. श्रीलाल शुक्ल, सीमाएँ टूटती हैं, पृ. 76
12. श्रीलाल शुक्ल, मकान, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली, पृ. 59
13. श्रीलाल शुक्ल, सीमाएँ टूटती हैं, पृ. 125
14. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का संत, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली, पृ. 22
15. वही, पृ. 40
16. वही, पृ. 160
17. वही, पृ. 155
18. शुक्ल, श्रीलाल. मकान; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली; पृ. 78
19. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद, "दो संस्कृतियों के बीच शीतयुद्ध के चितेरे कथाकार"; सम्पा. सीमा, ओझा; आजकल, वर्ष-67, अंक-10; फरवरी 2012 पृ.15

♦ व्याख्याता हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, 190006
ई-मेल: mudasirhindi@gmail.com

'कलि-कथा : वाया बाइपास' हिंदी उपन्यास का अपूर्व मानक



साहित्य सृजन के क्षेत्र में नए औज़ारों और प्रतिमानों की तलाश प्रतिभा संपन्न सजग-संवेदनशील लेखक के लिए आत्मान्वेषण की प्रक्रिया है। वह एक आत्मनिर्दिष्ट प्रक्रिया है। इसका परिणाम है हिंदी कथा साहित्य के क्षितिज में कथा फलक के विस्तार और औपन्यासिक शिल्प में मौलिक परिवर्तन और एक नई

♦ डॉ. बालसुब्रह्मण्यन सी

ताज़गी के बोध के साथ चिन्तन और सृजन की विलक्षण प्रतिभा धनी अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' का प्रकाशन 1998 में हुआ। अत्यंत बहुआयामी स्वभाव से युक्त कथ्य और उस कथ्य को समुचित ढंग से अभिव्यक्त करने योग्य अपूर्व शिल्प के कारण न केवल यह उपन्यास चर्चित हुआ, अपितु इसपर साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्रदान किया गया। प्रथम दृष्ट्या उपन्यास

में कलकत्ते के मारवाडी समाज की संरचना, उसका अतीत, उस अतीत का ऐतिहासिक दस्तावेज़ी प्रमाणों सहित चित्रण न केवल कलकत्ते के इतिहास में गहरे उतरता है अपितु अंग्रेज़ों के खिलाफ़ संघर्ष की राष्ट्रीय चेतना का परिचय भी घटना सूत्रों में अनुस्यूत मिलता है। उपन्यास की कथा मुख्य पात्र किशोर बाबू की है जो अपनी बाइपास सर्जरी के बाद दुनिया को बिल्कुल ही अलग सिरे से देखने लगते हैं। वे अपने जीवनभर दक्षिणी कोलकाता के अभिजात समाज का हिस्सा रहे। अचानक 'सडकमाप' बन जाते हैं, कोलकाता के अभद्र सड़कों पर भटकते दिखने लगते हैं और अपनी इस यात्रा में अपने परिवार के पूर्वजों से लेकर नई पीढ़ी की अपनी तीन वर्षीय नातिन तक के समय को खंगाल देते हैं।

'कलिकथा : वाया बाइपास' की लेखन-प्रक्रिया के दौरान लेखिका ने किशोर बाबू या अन्य पात्रों के जीवन की घटनाओं को किसी महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रसंग, ऐतिहासिक तिथि या घटना से जोड़ने की प्रविधि अपनाई है। उदाहरण के लिए 1757 ई. के प्लासी युद्ध में हुई साजिशों को जिस प्रकार गहन अध्ययन कर प्रस्तुत किया गया है, वह औपन्यासिक संवेदना को एक नया रंग देता है। 'छपनियाँ' (विक्रम संवत् उन्नीस सौ छप्पन) नाम से कुख्यात सन् 1899 के राजस्थान का अकाल, 1921 में मारवाडी समाज में हुआ पहला विधवा विवाह, आर.एस.एस. की गतिविधियाँ, प्रारंभ से लेकर अब तक के कलकत्ता की जीवन शैली में आए समाजार्थिक परिवर्तन, नई पीढ़ी का भूमंडलीकृत जीवन शैली में ढलते चले जाना, राम मंदिर की राजनीति तथा बाबरी मस्जिद ध्वंस आदि अनेक ऐतिहासिक व सामाजिक प्रकरणों का चित्रण उपन्यास की कथा में किया गया है। यहाँ लेखिका इतिहास को 'बोध' अथवा कृतिपरकता के रूप में पुनरुपलब्ध करने की कोशिश करती हैं। एक ओर उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से मारवाडी समाज के रक्त में बहनेवाले इतिहास को बेहद लोकप्रिय बनाया है तो दूसरी ओर आलोच्य उपन्यास वर्तमान में 'जीवंत इतिहास' है और तथाकथित 'शाश्वत इतिहास' की तरफ तर्जनी

उठानेवाला है। इसमें उपस्थित इतिहास पाठकों की चेतना को असीम वितानों की तरफ जगाकर असंख्य कुंजियों के द्वारा अगणित अर्थ देनेवाला है। यहाँ 'इतिहास' हमें कृति की ओर ले जाते हैं और कृति हमें एक अन्य तरह के इतिहास की ओर ले चलती है।

'कलिकथा : वाया बाइपास' उपन्यास रूपी जीवंत सांस्कृतिक निर्मिति में इतिहास प्रतिबिंबित नहीं होता, इतिहास गढ़ता है, इसलिए उपन्यास में एक नहीं अनेक इतिहास होते हैं। उपन्यास अपने आप में एक समांतर यथार्थ होने के साथ-साथ यथार्थ की समांतर रचना भी होती है जिसकी आंतरिक जटिल बुनावट उसे सरलीकरणों और विलयनों से रोकते हुए अन्य अर्थ आयामों की ओर ले जाता रहता है। वही इस उपन्यास की बेहद शक्ति है। महाख्यान एक की विराट और टिकाऊ बौद्धिक इमारत में रहने के अभ्यस्त मानस को 'कलिकथा' उपन्यास के उत्तरोत्तर बनते-बिगड़ते विन्यासों में बौद्धिक बेघरी का अहसास होता है। क्योंकि तमाम विराट विन्यास अनेक लघु विन्यासों के निष्कासन, दमन, अपहरण या बलात समायोजन से ही बनते हैं। इसलिए 'कलिकथा' संस्थापित भारतीय इतिहास का विरहस्यीकरण है, उसकी राजनीति को बेनकाब करने का कार्य है। उपन्यास के पाठ में एक नहीं बहुत स्वर गूँजते हैं। युग-युगों से बनी और अब तक किसी न किसी रूप में ज़ारी परिभाषाओं के अनुसार साहित्य कृति एक स्वायत्त क्षेत्र है जिस में स्थिर अर्थों से लेखक इतिहास-निरपेक्ष सार्वभौमिक मानवीय सत्यों को कहता है। 'कलिकथा' इस अवधारणा को तोड़नेवाली या 'बाइपास' करनेवाली रचना है। यह उपन्यास हमें बेहदी मैदान में ले जाता है। यहाँ यथार्थ चित्रण की सीमा 'घटित' का दुहराव नहीं, बल्कि उसका 'प्रतिकल्प' है, कायान्तरण है। यह बाख़ितन द्वारा द 'डायलॉगिक इमेजिनेशन' में उल्लिखित 'पोलीफ़ोनी' या 'बहुव्यवि' से युक्त रचना है। यह उपन्यास के प्रतिमानीकरण की संभावना से इनकार करनेवाली कृति है। यह एक सरल एकरेखीय वृत्तंत नहीं, यह एकरेखीय काल-बोध से अलग है दिक्-काल का

विखंडन और उसका अलग विन्यास इस कृति की अलग पहचान और शक्ति है। यह एक ऐसी कृति है जो एक से अधिक पाठ की अपेक्षा रखती है। यहाँ लेखिका की मौलिक सृजनात्मक शक्ति यह है कि वे हिन्दी कथा के चालू मुहावरे से बेखबर होकर अपने कथा मुहावरे को वैश्विक संपदा से समृद्ध करती हैं। यही कारण है कि उनपर न किसी हिंदी कथाकार की छाप है और न किसी को पछाड़ने की जल्दबाज़ी। यों कई दृष्टियों से 'कलिकथा' उपन्यास की संरचना अपने आप में अपूर्व और बेमिसाल है।

प्राचीन अथवा वर्तमान को खोलकर रख देना साहित्यिक प्रगति का एक रूप है। केवल उसे खोल देना ही पर्याप्त नहीं है, उससे प्रयास निष्प्राण हो जाता है, आवश्यकता होती है इस बात की कि उस अतीत के स्रोत हमारे जीवन में बहते दिखाए जा सकें जिससे उस अतीत के प्रवाह के भीतर से हमारे भविष्य तक विच्छिन्न न हो सके। 'कलिकथा' का मुख्य पात्र किशोर बाबू मारवाड़ी समाज व अपने देश-काल में अधिक जड़ जमा हुआ है। इस दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें बंगाली जीवन और साहित्य में मारवाड़ियों का स्थान किशोर बाबू की दृष्टि से अंकित है। ऑपरेशन के बाद किशोर बाबू पूरे शहर में भटकते हैं और कलकत्ते की आर्थिक, समाजिक, सांस्कृतिक जीवन पर नज़र डालते हैं, उसकी आलोचना करते हैं। मारवाड़ी और बंगाली कई पीढ़ियों से कोलकत्ता में एक साथ रहने के बावजूद बड़े पैमाने पर अलग-अलग जीवन जी रहे हैं। बंगला वाङ्मय में मारवाड़ी आमतौर पर एक रूढ़िवादी पैसा कमानेवाली प्रतिक्रियावादी के रूप में दिखाई देती है। 'कलिकथा' में भी हिंदी और बंगाली भाषी समुदायों के बीच दरार बरकरार रहती है। मारवाड़ियों के संबंध में प्रचलित उपर्युक्त धारणा का प्रतिनिधित्व करनेवाला है किशोर बाबू। लेकिन नई पीढ़ी किशोर बाबू की इस मारवाड़ी मनोवृत्ति से बिल्कुल अलग है। किशोर बाबू अपने को तिल-तिल गलाकर पैसा कमाना और जोड़कर रखना ही अपना धर्म मानते थे। नई पीढ़ी पैसे की चकाचौंध में बाज़ार में प्राप्त नई-नई वस्तुओं, उत्पादों, सुविधाओं आदि की प्राप्ति की होड़ में हैसियत से ज्यादा खर्च कर जीवन

जी रही है। नई पीढ़ी बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के चंगुल में फँस गई है।

वर्तमान बाज़ारी दुनिया में मानव अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए जीवन के तमाम क्षेत्र में 'ब्राण्ड' होने का प्रयास हो रहा है। वर्तमान परिदृश्य में ब्राण्ड ही संस्कृति के निर्माता और प्रबंधक रहे। उपन्यास के शब्द हैं -- 'किशोर बाबू की पत्नी को तो समझ में नहीं आती कि इन शर्टों में ऐसा क्या रखा है कि इनके इतने रूपए दिए जा रहे हैं। पर बच्चे बिना नामी ब्रांड की कोई चीज़ खरीदते नहीं।' (कलिकथा : वाया बाइपास, पृ.सं. 163)। देशी चीज़ों की उपेक्षा और ब्राण्ड चीज़ों के उपयोग के पीछे रुतबे की अवधारणा काम करती है। बाज़ारी संस्कृति में उपभोग की वस्तुओं द्वारा आदमी की हैसियत आँकी जा रही है तो ब्राण्ड होना सामाजिक वरीयता बनता जा रहा है। क्योंकि जब हम वस्तुएँ खरीदते हैं तो मात्र वस्तुएँ नहीं बल्कि उनसे जुड़ी हुई अवधारणाएँ भी खरीदते हैं। इससे किशोर बाबू का दिमाग खराब हो जाता है। महँगे से महँगे वस्त्र पहनने और महँगी गाड़ियों में बैठने का आनंद लेनेवाली यह नई पीढ़ी पैसे की परवाह नहीं करती। वे एक उधार (उदार भी) संस्कृति में जीने के लिए अनुकूलित कर लिए गए हैं। यह पीढ़ी किशोर बाबू की, पुरानी पीढ़ी की मारवाड़ी मनोवृत्ति से बिल्कुल अलग है। पुरानी पीढ़ी के लोग उधार की बात सोच ही नहीं सकते थे, उन्होंने कभी एक भी पैसा कर्ज नहीं लिया था। किशोर बाबू का जीवनादर्श यह था -- 'मारवाड़ियों ने इतना पैसा इसलिए कमाया कि उन्होंने कभी मौज़-मस्ती में पैसा उड़ाने के लिए कर्ज नहीं लिया। दूसरे के पैसे मारने की नीयत नहीं रखी। बाप मर गया तो बेटे ने कर्ज चुकाया। बेटा नहीं चुका पाया तो पोते ने चुकाया। और तिल-तिल करके पैसा जोड़ा। माचिस की तीलियों तक का हिसाब रखते थे, मेरे पिताजी।' (वही, पृ.सं.199)।

आज की नई पीढ़ी लोन और फाइनेन्स पर जीती हुई अपने उपभोग की महँगी से महँगी वस्तुएँ प्राप्त कर लेती है। घर में महँगी गाड़ी आने पर भुनभुनाते हुए किशोर बाबू अपने लड़के से केवल दो

ही सवाल पूछने का निर्णय मन में लेते हैं – “पहला रुपए कहाँ से लाए? दूसरा क्यों लिया ऐसा अभी इस समय?” इन दो प्रश्नों के उत्तर अमोलक उपभोक्तावादी संस्कृति की ज्वलंत सच्चाई साबित करनेवाले ढंग से ही देता है। प्रथम सवाल का जवाब है – “पापा रुपए किसीसे माँगने नहीं पड़े, आजकल सौ प्रतिशत फाइनन्स पर गाड़ी मिलती है। बस किस्तों में रकम चुका देंगे।” इस जवाब की प्रतिक्रिया अत्यंत दर्दनाक ढंग से किशोर बाबू यों करते हैं – “तुमने भविष्य के लिए रुपए आज खर्च कर दिए हैं – यानी जो रुपया तुम आगे कमाओगे।” इस तर्क का ज़्यादा असर अमोलक पर नहीं पड़ता है। उसके विचार में कर्ज चुकाने के लिए कर्ज लेते चले जाने में कहाँ की अक्लमंदी हैं। किशोर बाबू और अमोलक के बीच इस मुद्दे पर निरंतर बहस चलती रहती है कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने आम लोगों की क्या गत बना डाली है। अमोलक स्वयं इस भयंकर स्थिति को सोदाहरण यों कह जाता है – “देखते नहीं कितने लोग कैसे-कैसे किसलिए आत्महत्या कर रहे हैं- कोई लड़की ज़हर खा लेती है, क्योंकि उसका बाप उसे माधुरी दीक्षितवाला घाघरा-चोली नहीं ला देता और अपने इर्द-गिर्द क्या हो रहा है उसकी कोई खबर है आपको? अभी मेरे दोस्त अक्षय की पत्नी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि अक्षय उसे अपनी शादी की सालगिराह पर ‘ताज बंगाल’ नहीं ले गया था सेलीब्रेट करने। और कांता भाभी का तो सबको मालूम ही है- नए फर्नीचर और गहनों के सेट का दाम दिया नहीं भैयाजी ने। इसलिए ऐन दिवाली के पहले ज़हर खा लिया उन्होंने। दो दीदियों के घर में बड़ी गाड़ी है हमारा मन नहीं होता क्या? क्या आप चाहते हैं कि जो भैयाजी के साथ हुआ मेरे साथ भी वही हो।” (कलिकथा : वाया बाइपास, पृ.सं, 198-199) इन पात्रों और संवादों के माध्यम से लेखिका ने समाज में बढ़ते उपभोक्तावाद की होड़ के भयानक सच का

पर्दाफाश किया है।

‘कलिकथा वाया बाइपास’ उपन्यास समय के दरवाज़े को खटखटानेवाला है। समाज आज बेहद संश्लिष्ट और उलझा हुआ हो चला है। इसलिए वर्तमान परिदृश्य में साहित्य समाज का दर्पण नहीं, साहित्य सृजन की बदलती हुई प्रक्रिया है जिसे समय ने एक ज़रूरत में बदल दिया है। जो लोग इस ज़रूरत पर ध्यान नहीं देंगे, पिछड़ जाएँगे और उनका लिखा समय के दरवाज़े को खटखटा भी नहीं पाएगा। अलका सरावगी समय का नब्ज पकड़नेवाली हैं। ‘कलिकथा’ इसका परिणाम है। यह वर्तमान समय के अविश्वसनीय और अनाश्वस्तिदायक बदलाव को शब्दबद्ध करनेवाला उपन्यास है। समय का बदलना या बुरे समय में आना कोई दुर्घटना नहीं होती, वह ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम और प्रक्रिया में अत्यंत सतर्कता के साथ नमूदार होता है। उसे आत्मसात करते हुए रचित कालजयी उपन्यास है ‘कलिकथा’। आत्मसात करने और सृजन प्रक्रिया में लीन होने की अत्यंत जटिल प्रक्रिया के दौरान लेखिका ने वर्तमान परिदृश्य में आविर्भूत और व्याप्त सभी मुद्दों का कुशल अंकन नई भाषा, नई शैली या तकनीक का प्रयोग करते हुए किया है। इन मुद्दों में उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण बहुलतावाद, सांस्कृतिक प्रभुसत्तावाद, सूचना वर्चस्ववाद आदि अनेकानेक मुद्दे होते हैं। इसलिए ‘कलिकथा’ परंपरागत साहित्यशास्त्र की तयशुदा सीमाओं का अतिक्रमण करनेवाली या उन्हें तोड़नेवाली रचना है। इसने अब तक चली आ रही उपन्यास परंपरा को नया मोड़ दिया। इसने कथा-लेखन की एक ठहरी-इकहरी शैली से ऊबे हिंदी पाठक को एक ऐसी भाषा और कहन दी जिससे उसने अचानक अपने को समृद्ध अनुभव किया। एक मारवाडी परिवार की कई पीढ़ियों की दास्तान कहनेवाला यह उपन्यास शायद भाषा में उस दृष्टि को पिरोनेवाला पहला उपन्यास है जिसने नब्बे के दशक में देश में उदारीकरण के बाद जन्म लिया था।

बीसवीं सदी का आरंभ गाँधीजी, मार्क्स जैसे महान पुरुषों के आगमन से मानवीय संवेदनाओं के समाजीकरण से हुआ। लेकिन इस सदी का अंत

सामाजिक संवेदनाओं के अभूतपूर्व स्खलन से हुआ। यहाँ समाज बाज़ार की तरह देखे जा रहे हैं, जहाँ विक्रेता और ग्राहक होते हैं – इंसान नहीं होते। जो विक्रेता या ग्राहक नहीं, वे इंसान नहीं हैं। इस परिदृश्य का साक्ष्यांकन करनेवाली कृति है 'कलिकथा : वाया बाइपास'। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अन्तर्राष्ट्रीय झोले में सिर्फ मुनाफ़े को दुगुना-चौगुना करनेवाले ब्रांडों की खोखली गूँज है। हमारी ज़िन्दगी का लगभग हर हिस्सा बहुत तेज़ रफ्तार से अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्डों का गुलाम बनाता जा रहा है। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में हर चीज़ में 'ओनर्स प्राइड' और 'नेबर्स एनवी' की मनोवृत्ति कार्य करती है। सुन्दरता को पैदा करने, संवारने आदि के लिए सौंदर्य-उत्पादों पर जो खर्च होता है, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। महानगरों में अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांडों के दनादन खुलते शो-रूम इस उपभोक्तावाद को नित नए-नए रूपों में और भी बढ़ा-उक्सा रहे हैं। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद का यह भयावह चेहरा है जिसने मानवीयता और रिश्तों की ऊष्मा को पूरी तरह लील लिया है। किन्तु सारे विरोधों और हाय-तौब के बीच नई पीढ़ी बाज़ारवाद के इस खेल के लिए पूरी तरह अनुकूल हो चुकी है।

'कलिकथा : वाया बाइपास' की कथा में मानवीय चेतना का औपनिवेशीकरण अंतर्लीन है। इसमें वर्तमान परिदृश्य की सारी परिस्थितियाँ घटना-क्रम के सिलसिले में आई हैं, अपने दौर के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि परिवर्तनों के व्यापक उलझाव को मुद्दा बनाकर इसका कथा-फलक निर्मित है। उपनिवेशवाद ने गँवार से आधुनिक मानव का निर्माण किया तो नव उपनिवेशवाद ने आधुनिक मनुष्य से शहरी-बाज़ारी मनुष्य का। उपन्यास में चित्रित परदादाओं से किशोर बाबू और किशोर बाबू से बेटे तक की दूरी उपनिवेशवाद से नवउपनिवेशवाद तक के परिवर्तन की दूरी है। इस दूरी पर आकर किशोर का बेटा देश की पचास

सालगिराह पर फोर्ड कार खरीदकर मनाता है, पाँच सौ के नोट को 'गाँधी' कहता है, यहाँ तक कि वह अंग्रेज़ों के वापस आने तक की बात सोचता है। उपन्यास में व्यक्ति के अंदर और बाहर के समाज की टकराहट है। यहाँ भय छाया हुआ है। वह उत्तर औपनिवेशिक परिवेश द्वारा प्रदत्त भय है। औपनिवेशिक शक्तियों के प्रति जो आशंकाएँ आज के व्यक्ति के मन में हैं, वे ही भय का रूप धारण कर रही हैं। उपन्यास नव औपनिवेशिक समाज का चित्रण कर, इस चंगुल से मुक्त होने के लिए इतिहास से औज़ार ढूँढ निकालने की कोशिश करता है। वर्तमान स्थिति तक आते उपन्यास यह पहचान लेता है कि वर्तमान और इतिहास को मिलानेवाली कड़ी खो गई है।

साहित्यिक पाठ के पाठक को अपने विश्वास में लेने उसके अवचेतन तक स्वयं को रिसाने और उसके भावबोध में संध लगाने, कुलमिलाकर समानयन करने के तौर-तरीके कहीं ज्यादा बारीक और प्रभावी होते हैं और इन तौर-तरीकों का गहरा संबंध साहित्यिक पाठ के रूप और उसकी भाषाई संरचना के विभिन्न तत्वों से भी है। इसलिए 'कलिकथा' उपन्यास के भीतर की दुनिया की व्याख्या के लिए समाज को और सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ निर्मित कृति की भाषा को बुनियादी आधार वस्तु के रूप में ग्रहण करना पड़ता है। 'कलिकथा' में भाषा संरचनाएँ विविध अर्थ प्रवचनों में सहभागी होते हुए ही रहती हैं। 'कलिकथा' भाषा-केन्द्रिकता और स्वायत्तता के भीतर से ही कृति-बाह्य आधार को पा रही है, जिसे हम 'अन्य प्रकार का इतिहास' कह सकते हैं और जो विविध सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक या अन्यान्य पहलुओं के रूप में उपलब्ध होता है। इसलिए शुरू-शुरू में कोई भी साहित्यिक पाठ महज एक सामान्य पढ़त पर होता है, पर ज्यों ही वह 'टेक्स्ट' किसी 'कांटेक्स्ट' से जोड़कर पढ़ा जाने लगता है, वह अपनी भूमिका में बदल-बदल जाता है।

ऐसे कई 'कांटेक्स्ट' या ऐतिहासिक-सामाजिक या अन्यान्य प्रसंगों एवं घटनाओं से सरोकार रखनेवाली रचना है 'कलिकथा'। यह समाजेतिहास के ठोस, यथार्थ, वैज्ञानिक, वर्गगत आधारों की ऐसी निर्मिति है, जिसे डिकोड करते हुए हम समाजेतिहास के वास्तव-रूपों को पुनरुपलब्ध कर सकते हैं। उदाहरण के लिए धर्म के नाम पर जो बाज़ारीकरण चल रहा है, उपन्यास में उसका खूब उल्लेख है। धर्म के आधार पर विभाजन कबूल करते ही हम आज्ञाद हुए, परंतु आज्ञादी के इतने साल बाद भी हम सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं हुए। वह कई रूपों, भावों और रंगों में और भी शक्तिशाली हो गई। बंटवारे से समस्या सुलझी नहीं, बल्कि और अधिक उलझी जा रही है। किशोर बाबू 1997 के अंतिम पहर में सोचता है – लाखों लोगों के खून बहने से मिला विभाजन क्या दे पाया? अपने जैसी भाषा बोलनेवाले तौर अपने जैसे ही जलेबी, कलाकंद खानेवाले लोगों के साथ युद्ध? उन्हें शत्रु मानकर हथियार जमा करने के लिए अरबों-अरबों रुपए का खर्च, जबकि आज भी कलकत्ते की सड़कों पर कोढ़ी, भिखमंगे, औरतें, बच्चे उसी तरह भूखे नंगे फिरते हैं।' (कलिकथा वाया बाइपास, पृ.सं. 176) उसी प्रकार राजनीति के अपराधीकरण का एक बहुत बड़ा आपराधिक रूप राजनीतिज्ञों द्वारा प्रेरित और पोषित सांप्रदायिकता है जिसका रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद प्रकरण के माध्यम से लेखिका स्वामी सहजानंद के रूप में प्रदर्शित करती है। यों 'कलिकथा' को भारतीय इतिहास के अनेक प्रकरणों या उपकरणों से अलका सरावगी ने निर्मित किया है, अपूर्व औपन्यासिक शिल्प में निर्मित किया है, हम बेहद विस्मय में पड़ जाते हैं।

कई दृष्टियों से 'कलिकथा' एक आकर्षक

उपन्यास है। अध्याय शीर्षकों का सर्वप्रथम आकर्षक प्रयोग इस उपन्यास में मिलता है। कुछ शीर्षक हैं – समवेयर इन द नोर्थ, कलिकथा: 1940, जदि निर्वासने पाठावेई, ज़िन्दगियाँ बेमतलब नाइन्टीन फोर्टी टु: अ लव स्टोरी आदि। 'कलिकथा' के प्रकाशन के बाद उपन्यासों में अध्यायों के इस प्रकार के शीर्षक देना एक फैशननुमा प्रवृत्ति ही बन गई है। भाषाई शुद्धता की कृत्रिम दीवारों को तोड़ती कलिकथा की कथा भाषा अंग्रेज़ी से उसी अकुंठ भाव से शब्द अपनाती है जिस अकुंठ भाव से हमारे दैनिक जीवन में उनका प्रयोग हो रहा है। राजनीतिक व ऐतिहासिक प्रसंगों एवं स्मृति के प्रयोग की अपनी तकनीक में लेखिका उन घटनाओं या प्रसंगों के प्रयोग को इस प्रकार विन्यास कर लेती हैं कि अक्सर तकनीक ही कथ्य लगने लगती है। वस्तुतः संक्षिप्त कलेवर में 'कलिकथा' एक बहुआयामी कथा को नए शिल्प में सरस रूप में प्रस्तुत कर उपन्यास का एक नया मानक स्थापित करता है।

आधार ग्रंथ

कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी; आधार प्रकाशन; पंचकूला; 1998।

◆ सह आचार्य

हिन्दी विभाग

सरकारी विक्टोरिया कॉलेज

पालक्काट – 678001

केरल।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा
अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press. Karumom. Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha